मीरा के प्रभु गिरिधर नागर

प्रकाशक
श्री मान मन्दिर सेवा संस्थान
गहवर वन, बरसाना, मथुरा
उत्तर प्रदेश २८१ ४०५
भारतवर्ष

द्वितीय संस्करण

प्रकाशित ३१ अगस्त २०२५

श्रीराधाष्टमी, भाद्रपद, शुक्लपक्ष, २०८२ विक्रमी सम्वत्

सर्वाधिकार सुरक्षित २०२५ – श्री मानमंदिर सेवा संस्थान

Copyright© 2025 – Shri Maan Mandir Sewa Sansthan

http://www.maanmandir.org

info@maanmandir.org

ISBN

9788192807317

ISBN 978-81-928073-1-7

9 788192 807317 >

प्रकाशकीय

एक सशक्त राज्यसत्ता से सीधे-सीधे चित्तौड़ की महारानी अपने गिरिधर गोपाल की शरणागति के बल पर विरोध सहती हुई राजरानी व राजपूताने की कुलगरिमा के मान-सम्मान को तिलाञ्जलि देकर इस कलिकाल में सशरीर ही अपने आराध्य में लीन हो गईं, ऐसी भक्तिमती 'श्रीमीराजी' न केवल राजस्थान की अपितु सारे विश्व की सम्माननीया कृष्ण-प्रेयसी के रूप में आलोकित हुईं। यद्यपि किन-किन विषम-परिस्थितियों का सामना उन्होंने किया, वह आम-जनजीवन के लिए तो सह्य हो ही नहीं सकता था। विष को अमृत बनाने वाली मीरा की जीवन-शैली से अपने इष्ट को रिझाने में लगे ब्रज के परम विरक्त संत 'श्रीरमेशबाबामहाराज' नित्य रसाराधन के द्वारा सैकड़ों ब्रजबालाओं, भक्त-वैष्णवों को प्रियतम के प्रेम में अवगाहन करा रहे हैं। यद्यपि आज का समाज तो अनेक संकीर्णताओं में फँसकर कलियुग में अवतरित गोपिका स्वरूपा 'मीरा' के पदों को गाने में अपनी कथित अनन्यता का तिरस्कार समझता है परन्तु यह किसी परम वैष्णवी कृष्णप्रिया व आराधिका का अपराध है। मीराबाई के पावन चरित्र को चूँकि श्रीबाबामहाराज नित्य गाते हैं, अतः यह आवश्यक समझा गया कि उनके प्रियतम प्रेम को भक्तों के आस्वादनार्थ सार्वजनिक किया जाय और इसी दृष्टि से 'मीरा के प्रभु गिरिधर नागर' का प्रकाशन किया जा रहा है, जो भक्तों के लिए बड़ा ही सुखद होगा।

श्रीबाबामहाराज ने अपने संध्याकालीन प्रवचन में गोस्वामी नाभाजी कृत भक्तमाल के आधार पर श्रीमीराबाईजी के चरित्र पर जो सारगर्भित कथा कही थी, प्रस्तुत पुस्तक में पूज्यश्री के उन्हीं अमृतमय विचारों का संकलन किया गया है। भक्तिमती मीरा जी के सन्दर्भ में महाराजश्री द्वारा उपदिष्ट कथामृत को आप इस (Website : http://maanmandir.org/bhakta-charitra-meera-ji/) के द्वारा सहज ही श्रवण कर सकते हैं।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(रा.बा.का.दोहा.३क)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये ।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये ।

(सू. वि. प.)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये ।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी ह्वै बन जाये ॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्ज्वलता आ जाये ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित - ब्र. भा. मा.से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य विभूति का प्रकर्ष आर्ष जीवन चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सू.वि. प.)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन

को निकेतन कर लिया अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीययोजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान सुख अप्राप्य रहा, संतान प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र कामना ने व्यथित किया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माताजी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया। शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।"

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीतमार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो

बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पद्मों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्रीमानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के

कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय ?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज चालीस हजार से अधिक गाँवों में प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्त्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "राधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनामसंकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी। गौवंश के रक्षार्थ सन् २००७ में 'श्रीमाताजी गौशाला' का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज लगभग सत्तर हजार से अधिक गायों का मातृवत् पालन हो रहा है। संग्रह परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की **श्रीभगवन्नाम** ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है।

यही करुणा करना करुणामयी मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गह्वरवन कुञ्ज निकट रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित – ब्र.भा.मा. से संग्रहीत)

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये, इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने, गत् सत्तर वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – श्री रसिया रासेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी। सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं। ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी। श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म,

पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें।

आपकी प्रेम-प्रदायिका, परम पुनीता पद-रज-कणिका को पुनः-पुनः प्रणाम है।

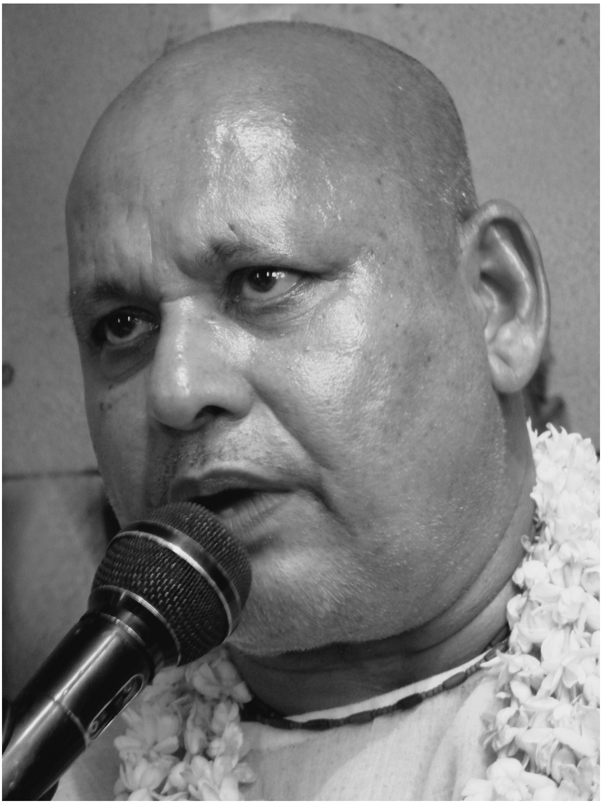

श्री मीराबाई जी

श्रीनाभा जी कृत 'श्रीभक्तमालजी' को समस्त वैष्णव सम्प्रदायों का सम्मान प्राप्त है । जैसा कि आज हम टेलीविजन के माध्यम से पूर्व के घटनाक्रम को देख पाते हैं, ठीक उसी तरह ४५० वर्ष पूर्व अपने गुरुदेव श्रीअग्रदास जी महाराज की आज्ञानुसार श्री नाभा जी ने सत्ययुग से कलियुग तक के भक्तों के चरित्र को अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा देखा तथा उसे हस्तलिखित किया। श्री मीराबाई जी के कृष्ण-प्रेम को वर्णन करने वाला नाभाजी का यह प्रसिद्ध छप्पय है –

लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ ।
निरअंकुश अति निडर रसिक जस रसना गायौ ॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्यम कीयौ ।
बार न बाँकौ भयौ गरल अमृत ज्यौं पीयौ ॥
भक्ति निसान बजायकै काहू ते नाहिन लजी ।
लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥ ११५ ॥

श्रीनाभा जी कृत पूर्वोक्त छप्पय पर श्रीप्रियादास जी कृत 'भक्तिरस-बोधिनी' टीका के मीरा-चरित्र पर विस्तृत कवित्त इस प्रकार हैं।

मेरतौ जनम भूमि झूमि हित नैंन लगे
पगे गिरिधारीलाल पिता ही के धाम में ।
राना कै सगाई भई करी ब्याह सामा नई गई
मति बूड़ि वा रँगीले घनस्याम में ॥
भाँवरैं परत मन साँवरे सरूप माँझ
ताँवरैं-सी आवैं चलिवे कौ पति ग्राम में ।
पूछैं पिता-माता पट आभरन लीजियै जू
लोचन भरत नीर कहा काम दाम में ॥ ४७१ ॥

देवौ गिरिधारीलाल जौ निहाल कियौ चाहौ
और धनमाल सब राखियै उठायकै।
बेटी अति प्यारी प्रीति रंग चढ्यौ भारी
रोय मिली महतारी कही लीजियै लड़ायकै॥
डोला पधराय द्दग-द्दग सौं लगाय चलीं
सुख न समाय चाय प्रानपति पायकै।
पहुँचीं भवन सासु देवी पै गवन कियौ
तिया अरु वर गँठजोरौ कर्यौ भायकै॥४७२॥

देवी के पुजायवे कौं कियौ लै उपाय सासु
वर पै पुजाइ पुनि बधू पूजि भाखियै।
बोली जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ
और कौ न नवै एक वही अभिलाखियै॥
बढ़त सुहाग याके पूजे ताते पूजा करौ
करौ जिनि हठ सीस पाँयनि पै राखियै।
कही बार-बार तुम यही निरधार जानौ
वही सुकुमार जापै वारि फेरि नाखियै॥४७३॥

तबतौ खिसानी भई अति जरि बरि गई
गई पति पास यह बधू नहीं काम की।
अबहीं जवाब दियौ कियौ अपमान मेरौ
आगे क्यौं प्रमान करै? भरै स्वांस चाम की॥
राना सुनि कोप कर्यौ धर्यौ हिये मारिवोई
दई ठौर न्यारी देखि रीझी मति बाम की।
लालनि लड़ावै गुन गायकै –
मल्हावै साधुसंग ही सुहावै
जिन्हें लागी चाह श्याम की॥४७४॥

आयकै ननन्द् कहै गहै किन चेत भाभी!
साधुनि सौं हेत में कलंक लागै भारियै।
राना देशपति लाजै बाप कुल रीति जात
मानि लीजै बात वेगि संग निरवारियै॥
लागे प्रान साथ सन्त पावत अनन्त सुख
जाको दुख होय ताको नीके करि टारियै।
सुनिकै कटोरा भरि गरल पठाय दियौ
लियौ करि पान रंग चढ्यौ यों निहारियै॥४७५॥

गरल पठायौ सो तौ सीस लै चढ़ायौ
संग त्याग विष भारी ताकी झार न सँभारी है।
राना नै लगायौ चर बैठे साधु ढिंग ढर
तबही खबर कर मारौ यहै धारी है॥
राजैं गिरिधारीलाल तिनहीं सौं रंग जाल
बोलत हँसत ख्याल कान परी प्यारी है।
जायकै सुनाई भई अति चपलाई आयौ
लिये तरवार दै किवार खोलि न्यारी है॥४७६॥

जाके संग रंग भींजि करत प्रसंग नाना
कहाँ वह नर गयौ वेगि दै बताइयै।
आगे ही विराजै कछू तोसौं नहीं लाजै अभूँ
देखि सुख साजै आँखैं खोलि दरसाइयै॥
भयोई खिसानौ राना लिख्यौ चित्र भीत मानौ
उलटि पयानौ कियौ नेकु मन आइयै।
देख्यौ हूँ प्रभाव ऐपै भाव में न भिद्यौ जाइ
बिना हरिकृपा कहो कैसे करि पाइयै॥४७७॥

विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ
कियौ यों प्रसंग मोसों अंग-संग कीजियै।
आज्ञा मोकौं दई आप लाल गिरिधारी अहो
सीस धरि लई करि भोजन हूँ लीजियै॥
सन्तनि समाज में बिछाय सेज बोलि लियौ
शंक अब कौन की निशंक रस भीजियै।
सेत मुख भयौ विषैभाव सब गयौ
नयौ पाँयन पै आय मोकौं भक्तिदान दीजियै॥४७८॥

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये
लिये संग तानसेन देखिवे कौं आयो है।
निरखि निहाल भयौ छबि गिरिधारीलाल
पद सुखजाल एक तबही चढ़ायो है॥
वृन्दावन आई जीव गुसाँई सौं मिलि झिली
तिया मुख देखिवे को पन लै छुटायो है।
देखि कुँज-कुँज लाल प्यारी सुखपुंज भरी
धरी उर माँझ आय देश वन गायो है॥४७९॥

राना की मलीन मति देखि बसी द्वारावति
रति गिरिधारीलाल नित ही लड़ाइयै।
लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि
अति दुख मानि विप्र श्रेणी लै पठाइयै॥
वेगि लैकै आवौ मोकौं प्रान दै जिवावौ
अहो गये द्वार धरनौ दै विनती सुनाइयै।
सुनि विदा होन गई राय रनछोर जू पै
छाँड़ौं राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै॥४८०॥

भक्तिमती श्रीमीराबाई की जय !
श्रीगिरिधर गोपाल की जय !!

युगधर्मों को जीतकर इस कलिकाल में द्वापर के गोपी-प्रेम-लीला को प्रकट करने वाली मीराबाई जी हुयीं। यद्यपि भक्तमालजी में श्रीनाभाजी ने अनेक महापुरुषों के चरित्रों का गान किया; किन्तु उन्होंने जैसा मीराबाई जी के बारे में लिखा है, इतनी बड़ी बात अन्य किसी के बारे में नहीं लिखी। कुछ महापुरुष हैं जिनके बारे में लिखा है, जैसे गुसाँई विट्ठलनाथ जी के बारे में लिखा है –

"वल्लभसुत बल भजन के कलियुग में द्वापर कियौ ।"

ये महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के पुत्र थे, इन्होंने द्वापर की सेवा-पद्धति का कलियुग में विस्तार किया; किन्तु मीराजी के बारे में श्रीनाभाजी ने जो लिखा है कि **'सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ '**ऐसा किसी के बारे में नहीं कहा; परन्तु फिर भी बहुत से लोग साम्प्रदायिक-संकीर्णताओं के कारण महापुरुषों की वाणियों को समझ नहीं पाते हैं और मीरा जी की निन्दा करते हैं।

श्रीनाभाजी द्वारा विरचित भक्तमालजी का इसीलिए सम्मान है क्योंकि उन्होंने सम्पूर्ण संकीर्णताओं से ऊपर उठकर 'मेरा-तेरा 'यह सब छोड़कर के जिस भक्त का जैसा स्वरूप था, वैसा ही वर्णन किया है। श्रीनाभाजी ने लिखा कि द्वापर में जैसा गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम था, वही गोपिका-प्रेम कलियुग में मीराबाई ने क्रियात्मक रूप से दिखाया। इतना ही नहीं मीराबाई ने कृष्ण-प्रेम के लिए जो लड़ाई लड़ी, यातनायें सहीं, वह केवल गोपी-जन ही कर पायी थीं और आज तक कोई नहीं कर पाया। यह कोई पक्षपात की बात नहीं है। स्वयं नारदजी ने 'नारदभक्तिसूत्र 'में कहा है –

'यथा व्रजगोपिकानाम् ॥'

(ना.भ.सू. २१)

यद्यपि सभी अवतारों में श्रेष्ठ-श्रेष्ठ भक्त हुए हैं लेकिन जब प्रेम का प्रश्न आता है, तो चाहे वह किसी अवतार के भक्त का प्रेम हो; नारद जी के अनुसार – सर्वोत्कृष्ट ब्रज-गोपिकाएँ हैं। क्यों हैं? क्योंकि उसका मूल कारण है कि जिस प्रेम में जितनी कसौटियाँ पार की जाती हैं, कठिनाईयों को पार किया जाता है, वह प्रेम उतना ही सशक्त माना जाता है।

उद्धवजी जब ब्रज से द्वारिका जा रहे थे, तब चलते समय उन्होंने न तो नन्दबाबा की चरण-रज माँगी, न यशोदा जी की चरण-रज माँगी और न अन्य अवतारों के भक्तों की। अनन्त भक्तों में उन्होंने एकमात्र ब्रज-गोपिकाओं की ही चरण-रज माँगी। इसी से गोपियों के महत्व का पता पड़ता है। उद्धवजी ब्रज से जाते समय एक ऊँचे से टीले पर खड़े होकर यमुना जी का किनारा देखने लगे। जहाँ ब्रज-गोपिकायें विरह से संतप्त होकर कृष्ण-गुणगान कर रहीं थीं, तब उनका ऐसा प्रेम देखकर के उद्धवजी ने कहा –

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(भा. १०/४७/६१)

हे प्रभो ! आप मुझे इस ब्रजक्षेत्र में कोई घास, लता-पता ही बना दो। किसी ने कहा –“ अरे उद्धव ! हमने तो सुना था कि तुम बड़े ज्ञानी हो परन्तु तुम तो बड़े मूर्ख मालूम पड़ते हो।” उद्धवजी बोले – “क्यों? ” अरे, लोग तो भगवान् से भवसागर से मुक्त होने का वरदान माँगते हैं, मुक्ति चाहते हैं फिर तुम इस मृत्युलोक में जन्म लेकर तुच्छ घास, लता-पता क्यों बनना चाहते हो? उद्धवजी बोले –“ मैं इस ब्रज में इसलिए लता-पता बनना चाहता हूँ कि मुझे कृष्ण-प्रेमोन्माद में उन्मत्त ब्रज-गोपियों की चरण-रज प्राप्त हो जाय; ये स्वयं तो देगी नहीं क्योंकि ये बड़ी प्रेम की मूर्ति हैं, दीन हैं ;यदि मैं इनके चरणों का सेवक बनना चाहूँ तो ये बनाएँगी नहीं, इसलिए अगर मुझे भगवान् वृन्दावन में लता-गुल्मादि बना दें तो मुझे गोपियों की चरण-रज सहज में

मिल जायेगी। मैं गोपियों के चरणों की धूल प्राप्त करने के लिए सब कुछ बनने को तैयार हूँ।

ब्रज-गोपियों ने जैसा त्याग किया वैसा आज तक कोई नहीं कर पाया। भगवान् के अनेकानेक भक्त हुये हैं, ब्रज में भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भक्त हुए; परन्तु जैसा गोपियों ने दुस्त्यज त्याग किया वैसा और कोई नहीं कर पाया। स्वजनादि तो छोड़ना सरल है पर दुस्त्यज त्याग हर कोई नहीं कर पाता है। जब कोई साधु बनता है, तब वह सब कुछ छोड़ देता है परन्तु वह भी आर्यपथ को नहीं छोड़ पाता; लेकिन गोपियों ने उस आर्यपथ को भी छोड़ दिया। पूर्वावतारों में स्वयं जनकनन्दिनी जानकीजी आदि भी ऐसा त्याग नहीं कर पायीं; वे भी आखिर तक पातिव्रत धर्म में बँधी रहीं; परन्तु जो गोपियों का प्रेम था वह आर्यपथ को छोड़कर के था। ऐसा प्रेम आज तक किसी ने नहीं किया। उनके प्रेम को, उनके त्याग को श्रीकृष्ण ने अपनी लीला में दर्शाया भी है।

द्वारिका की महिषियों को गोपियों के प्रेम की महिमा समझाने के लिए एक बार श्रीकृष्ण ने द्वारिका में एक लीला की ;उन्हें उदर शूल)पेट दर्द (हुआ। सारे द्वारिका के वैद्य थक गए, उनका उपचार करते-करते पर वह उदर शूल ठीक होने के बजाय उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उसी समय भगवद्-इच्छा से कहीं से घूमते हुए नारदजी द्वारिका आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा सारे द्वारिकावासी दुःखी हैं। यह देखकर नारदजी को बड़ा कौतूहल लगा कि जिस नगरी के रक्षक साक्षात् श्रीकृष्ण हैं और वहाँ के निवासी दुःखी हैं तो उन्होंने उन लोगों से दुःख का कारण पूछा? सभी द्वारिकावालों ने बहुत चिंता प्रकट की और नारद जी को बताया कि द्वारिकाधीश को उदर शूल हुआ है और उन्हें अपार कष्ट है, इसीलिए हम सब दुःखी हैं। यह विचित्र घटना सुनकर नारद जी शीघ्रता से वहाँ पहुँचे जहाँ श्रीकृष्ण लेटे हुए थे।

नारद जी –" महाराज ! हमने सुना है आपको उदर शूल हुआ है, आप बड़े कष्ट में हैं; उपचार भी बहुत किए गये परन्तु कुछ भी आराम नहीं हुआ तो फिर आप ही बताइये कि आपके इस रोग की दवा क्या है? "

श्रीकृष्ण – नारदजी ! यदि कोई भक्त अपनी चरण-रज दे दे तो हमारा दर्द दूर हो सकता है।

उसी समय नारदजी ने सभी रानियों से कहा कि तुम अपनी चरणों की धूल दे दो तो तुम्हारे पति स्वस्थ हो जायेंगे।

रानियाँ बोलीं –" अरे, हम कैसे दे सकती हैं? पति-पत्नी की भी तो कोई मर्यादा होती है, वे हमारे पतिदेव हैं, हमारा पातिव्रत-धर्म नष्ट हो जाएगा और ऐसा कहते हुये उन्होंने चरण-रज नहीं दी।

तब नारदजी चल पड़े और सारे ब्रह्माण्ड में घूमे परन्तु किसी भी भक्त ने चरण-रज नहीं दी ;निराश होकर वे लौटकर के आये और श्रीकृष्ण से बोले – महाराज ! आपके रोग की दवा कहीं नहीं मिल रही है, अब ऐसे ही तड़पते रहो।

श्रीकृष्ण – क्यों?

नारदजी – किसी ने अपनी चरण-रज ही नहीं दी।

श्रीकृष्ण – देवर्षे ! आप ब्रज में गये कि नहीं?

नारदजी – प्रभो ! ब्रज में तो नहीं गया हूँ।

श्रीकृष्ण –" वहाँ जाओ, वहाँ अवश्य तुम्हें इस रोग की दवा मिल जायेगी।"

नारदजी ब्रज की ओर चल दिये, जब ब्रज में पहुँचे तो वहाँ गोपियों ने देखा कि नारदजी आये हैं तो वे दौड़कर के आयीं और उनसे पूछने लगीं – "हे देवर्षि ! हमारे श्यामसुन्दर कैसे हैं? "

नारद जी – देवियो ! कुछ मत पूछो, उनका बड़ा बुरा हाल है, रो रहे हैं, कष्ट पा रहे हैं।

ब्रज-गोपियाँ – अरे ! सोलह हजार रानियों में भी उनको कष्ट है।

नारदजी – हाँ ! उन्हें उदर शूल हुआ है और उपचार करने से बढ़ता जा रहा है।

ब्रज-गोपियाँ – इसकी कोई औषधि नहीं है क्या?

नारदजी – हाँ, है तो परन्तु कोई देता ही नहीं।

ब्रज-गोपियाँ -क्या औषधि है, जल्दी बताओ?

नारदजी – कोई भक्त अपने चरणों की धूल दे दे तो उनका रोग ठीक हो जाएगा।

ब्रज-गोपियाँ – अरे ! द्वारिका में इतनी रानियाँ हैं किसी से भी चरण-रज माँग लेते।

नारदजी – वे तो स्त्री हैं, वे कैसे दे सकती हैं क्योंकि श्रीकृष्ण उनके पति हैं, उनको नरक में नहीं जाना पड़ेगा?

ब्रज-गोपियाँ –" अरे ! राम-राम ! ये नरक-वरक क्या होता है? " उसी समय सभी गोपियाँ अपने-अपने चरणों की धूल लेकर नारद जी को देने लगीं, 'लो हमारे चरणों की धूल ले जाओ।' इस तरह नारदजी की झोली कई मन धूल से भर गयी और गोपियाँ बोलीं – "ले जाओ, हम पोट बाँधकर तुम्हारे सिर पर रख देती हैं।"

अस्तु गोपियों ने लोक-परलोक की चिन्ता नहीं की कि भगवान् को चरणों की धूल देने से नरक जाना पड़ेगा, क्योंकि जो सच्चा भक्त होता है, वह स्वर्ग-नरक नहीं सोचता है।

इसीलिए उद्धव जी ने कहा है कि जिन गोपियों ने आर्यपथ (वैदिक धर्म) को भी छोड़ा, उनकी चरण-रज मुझ पर पड़ जाये तो मैं धन्य हो जाऊँगा।

इसी भाव को परमानन्द स्वामी जी ने एक पद में लिखा है –

जो मेरो यह लोक जायेगो और परलोक नसाय री।
नन्दनन्दन को तौऊ न छाडूं मिलूँगी निसान बजाय री॥
नन्दलाल सौं मेरो मन मानौ कहा करैगो कोय री।
हों तो चरणकमल लपटानी होनी होय सो होय री॥

गोपी कहती है –“ हमने लोक-परलोक सब छोड़ दिया; अनन्तकाल तक चाहे हमको सद्गति न मिले लेकिन फिर भी मैं नन्दनन्दन श्यामसुन्दर को नहीं छोड़ूँगी।”

इसलिए आर्यपथ को छोड़ना बड़ा कठिन है। आर्यपथ (वैदिक-मर्यादा) का पालन सब करते हैं। स्वयं भगवान् श्रीराम करते हैं, भगवती सीताजी करती हैं। सीताजी का परित्याग करने के बाद जब रामजी ने यज्ञ किया तो रामजी से ऋषियों ने कहा कि स्त्री के बिना यज्ञ नहीं होगा, आप दूसरा विवाह करो।

रामजी – दूसरा विवाह तो मैं नहीं कर सकता।

ऋषि – तो यज्ञ नहीं हो सकता है।

रामजी – कोई दूसरा उपाय है क्या?

ऋषि – “अगर स्वर्ण की सीता बनाई जाए तो यज्ञ हो सकता है। जैसे मन्दिरों में भगवान् तो नहीं हैं लेकिन मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा होती है और मूर्ति भगवान् ही मानी जाती है।" अतः स्वर्ण की सीता बनाई गयी, उनकी प्राण-प्रतिष्ठा हुयी और यज्ञ हुआ। इस तरह से रामजी ने अनगिनत यज्ञ किये और अन्त में वे स्वर्ण की सभी सीताएँ रामजी के पास इकट्ठा होकर के आयीं। अनेकों सीताओं को देखकर रामजी घबड़ा गए और वे रामजी से बोलीं – आपने हमारा पाणिग्रहण किया है, अब हमको आपके साथ रमण का भी अवसर मिलना चाहिए। रामजी बोले –“ ये तो हम नहीं कर सकते” तो वे बोलीं –

कथंचास्मान्नगृह्णासिभजन्तीर्मैथिलीः सतीः ।
अर्धाङ्गीर्यज्ञकालेषु सततंकार्यसाधिनीः ॥

(गर्गसंहिता गो.ख. ४/६४)

“हमारा ग्रहण क्यों नहीं करते हो? हम भी तो सीता हैं, सती हैं; आप तो धर्म के सम्यक ज्ञाता हो, स्त्री का त्याग तब होता है जब वह सती नहीं हो लेकिन हम तो सती हैं, आप हमारा त्याग नहीं कर सकते हो। यज्ञ के समय तो आपने हमसे पूरा काम बना लिया और जब काम बन गया तो हमारा

त्याग कर रहे हो। आप वेद के ज्ञाता हो, वेद-मर्यादा के अनुसार सती स्त्री का त्याग नहीं करना चाहिए; इससे आपको अधर्म लग जाएगा।"

यही बात श्रीमद्भागवत में भी लिखी है –

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ।
गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रतश्वसन् मृतः ॥

(भा. १०/४५/७)

वह मुर्दा है – जो साध्वी स्त्री, गुरु, माता-पिता का त्याग करता है।

इसलिए उन्होंने कहा कि हम तो साध्वी हैं और दूसरी बात है कि आपकी अर्धांगी हैं। आप तो धर्म को जानते हैं, वेद को भी आप धारण करते हैं फिर भी आप अधर्माचरण क्यों कर रहे हैं। आप हमको त्याग रहे हो इसका मतलब आर्य-मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हो, इससे आपको पाप लगेगा। तब रामजी वहाँ झुक गए और बोले –

समिचीनंवचः सत्योयुष्माभिर्गदितंचमे ।
एकपत्निवृतोऽहंहिराजर्षिः सीतयैकया ॥

(गर्गसंहिता गो.ख. ५/६४)

हे देवियो ! आपकी वाणी सत्य है, आपने जो कहा है वह सब सत्य है; मैं आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा। आप लोग सती हैं; इसलिए आपको भी अपने पति की आज्ञा मानना पड़ेगी। आप लोग चलो वृन्दावन में, मैं वहाँ वृन्दावन में आऊँगा। इस समय मैं आपका मनोरथ पूर्ण नहीं कर सकता; क्योंकि इस समय मेरा एक पत्नीव्रत है। आप भले सीता हैं लेकिन आप अनेक मूर्ति हैं। इसीलिए किसी का मैं स्पर्श नहीं कर सकता; लेकिन आपका त्याग करना भी ठीक नहीं है, अतः आप वृन्दावन में जाइये, मैं द्वापर में कृष्णावतार लेकर आऊँगा और वहाँ आपको अवश्य वरण करूँगा।

इसलिए श्रीरामजी हों चाहे जानकीजी; उनकी जितनी लीलाएँ थीं वे सब आर्य-मर्यादा से बँधी हुई लीलाएँ थीं परन्तु यहाँ गोपीजनों ने सब मर्यादायें तोड़ दीं और जब श्रीकृष्ण ने उनको आर्य-मर्यादा की शिक्षा दी है तो उन्होंने उसका खण्डन कर दिया। भागवत में रासपञ्चाध्यायी में कथा है – यमुना के तट पर श्रीकृष्ण ने वेणु वादन किया, अनन्त गोपियाँ श्रीकृष्ण

की वंशी की धुन पर मोहित होकर रात में उनके पास पहुँची। श्यामसुन्दर बोले कि तुम सब इतनी रात को क्यों आयी हो? तुम अगर यमुना के किनारे की सुन्दरता देखने आयी हो तो देख चुकी हो, अब लौट कर वापस चली जाओ; देर मत करो क्योंकि तुम सती हो, जाओ अपने पतियों की सेवा करो, बच्चों की सेवा करो, वे रो रहे होंगे। अगर मेरा दर्शन करने आयी हो तो दर्शन कर लिया अब लौट जाओ। तुम हमारे पास दर्शन करने आ गयी यही बहुत है और अगर मेरे प्रेम के कारण तुम आयी हो तो वो तो सारा संसार मेरा भजन करता है। इसलिए यहाँ तक तो ठीक था तुम आयी हो लेकिन अब धर्म वही है जो हम बता रहे हैं, अब उसका पालन करो –

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥

(भा. १०/२९/२४)

सबसे बड़ा धर्म है अपने पतियों की सेवा करना चाहिए। कपट नहीं करना चाहिए कि हम अपने पतियों की सेवा कर रहे हैं और इधर-उधर भी झाँक रहे हैं तो वह फिर निकृष्टता है, नारकीयता है। इसलिए निष्कपटता होनी चाहिए। इस तरह भगवान् ने शुद्ध आर्य-मर्यादा का उपदेश दिया कि तुम सती हो, कल्याणी हो, कल्याणमयी स्त्री हो, कल्याणी स्त्री घर में रहती है, इसलिए लौट जाओ और परिवार का पोषण करो। पति चाहे कैसा भी है – बुड्ढा, रोगी, दुष्ट, दुःशील, क्रोधी, मारने-पीटने वाला तो भी सती स्त्री को पति को नहीं छोड़ना चाहिए।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥

(भा. १०/२९/२५)

अगर ये छः दोष भी पति में हों तो भी उसको मत छोड़ो, परलोक को चाहने वाली स्त्री कभी ऐसा नहीं करेगी; जो करती है वह नारकीय है। अतः तुम तो कल्याणी हो, सती हो फिर तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितं च सर्वत्र ह्यौपपत्यं कुलस्त्रियाः ॥

(भा. १०/२९/२६)

पति को छोड़कर दूसरा उपपति करना ये सतीत्व के विरुद्ध आचरण है। इसलिए तुम हमारा भजन तो करो लेकिन भगवान् समझकर इष्ट-बुद्धि से क्योंकि सती स्त्रियाँ भी हमारा भजन करती हैं। सती स्त्री का पति भी हमारा भजन करता है।

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानाद् मयि भावोऽनुकीर्तनात् ।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥

(भा. १०/२९/२७)

मेरी कथा सुनो, मेरा दूर से दर्शन करो, मेरा कीर्तन करो, मेरे पास में आने की कोई जरूरत नहीं है। मेरे में भाव करो, कीर्तन करो।

अब इसको सुनकर गोपियाँ उदास हो गयीं, उनका संकल्प टूट गया, चिन्ताग्रस्त हो गयीं, नीचे सिर कर लिया और उनके मुख से इतने गर्म स्वाँस निकले कि उनके होंठ सूख गए, शरीर एकदम लक्कड़ हो गया।

ये प्रेम की दशाएँ होती हैं, ऐसी दशाएँ संसारी प्राकृत काम में नहीं होतीं, ये तो प्रेम में ही होती हैं।

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्
बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥

(भा. १०/२९/२९)

गोपियों के होंठ सूख गए, पाँव से जमीन कुरेदने लग गयीं, आँखों से आँसू निकलने लगे ;इतने आँसू आये कि उनकी चोली भीग गयी, रोते-रोते नेत्र लाल हो गए और मुख से कुछ बोल नहीं पायीं; क्योंकि उनके श्रीकृष्ण ही सब कुछ थे, जिनके लिए उन्होंने लोक-परलोक सब कुछ छोड़ दिया था, अब यहाँ श्रीकृष्ण के भाषण के बाद से शुरू हो रहा है **गोपी प्रेम**।

गोपियाँ आवेश में बोलीं – हे विभो ! ये तुम्हारा धर्म-बर्म हम नहीं जानते, तुम क्रूर वाणी बोलते हो और इस तरह उन्होंने श्रीकृष्ण को फटकार दिया क्योंकि गोपियाँ प्रेम-शास्त्र की ज्ञाता थीं, तभी तो नारद जी ने लिखा है **'यथा ब्रजगोपिकानाम्'**। ये श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि गोपियाँ हमारी गुरु

भी हैं। अब गोपियाँ श्रीकृष्ण को अनन्य धर्म सिखा रहीं हैं और यही अनन्य धर्म गोपियों से सीखकर श्रीकृष्ण ने गीता के अन्त में अर्जुन से कहा है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

यह अनन्य धर्म श्रीकृष्ण ब्रज-गोपियों से ही सीखकर गए थे; क्योंकि वे गोपियों के शिष्य थे। गोपियाँ बोलीं –

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥

(भा. १०/२९/३१)

"तुम विभु हो अर्थात् व्यापक हो, ईश्वर हो, हम जानती हैं लेकिन तुम क्रूर वाणी बोलते हो। संसार में जितनी सती स्त्रियाँ हैं वे अपने पतियों की सेवा करती हैं लोक-परलोक की कामना से; परन्तु हमने तो सब कामनाओं को छोड़ दिया है। "ये है गोपियों का अनन्य धर्म; इसको सती स्त्री क्या पायेगी? चैतन्यचरितामृत में कहा है –

प्रेमेर कामेर बहुत अन्तर ।
काम अन्धतम प्रेम भास्कर ॥

प्रेम और काम में बहुत बड़ा अन्तर है; प्रेम सूर्य है और काम अन्धकार है। अन्तर क्या है?

निज इन्द्रिय वाञ्छा हेतु काम तो प्रबल ।
कृष्ण सुख वाञ्छा हेतु प्रेम तो प्रबल ॥

अपनी इन्द्रिय-प्रीति की जरा-भी कामना है तो काम बन गया और 'कृष्ण को सुख मिले' ये प्रेम हो गया। भागवत में भी रासपंचाध्यायी में आता है –

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

(भा. १०/३१/१९)

गोपियाँ श्रीकृष्ण के चरणों को अपने स्तनों पर धीरे से रखती थीं क्योंकि वे कहती हैं – हमारे स्तन बड़े कठोर हैं, कहीं कृष्ण के सुकोमल चरणों में चुभ न जाएँ। ये गोपियों का प्रेम था, जिसमें निज इन्द्रिय-प्रीति की कामना बिल्कुल भी नहीं थी। जबकि संसार की सभी नायिकायें रति-क्रिया में अपने स्तनों का पीडन चाहती हैं लेकिन गोपियाँ नहीं चाहती थीं।

अतः गोपियाँ श्यामसुन्दर से बोलीं कि तुमने जो हमें स्त्री-धर्म सिखाया, आर्यपथ का पाठ पढ़ाया, वह तो तुम स्वयं समझो।

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥

(भा. १०/२९/३२)

हे श्यामसुन्दर ! तुमने जो पति-पुत्र, बन्धु-बान्धवों आदि की सेवा बताई, स्त्रियों का स्वधर्म)सती-धर्म(सिखाया, वह तो तुम्हारे ऊपर ही लागू होता है। कृष्ण बोले – 'क्यों? ' वे बोलीं क्योंकि तुम्हीं समस्त देहधारियों के प्रिय हो, बन्धु हो, आत्मा हो ;इसलिए हमारे सच्चे पति तो तुम्हीं हुए। इसका कृष्ण के पास कोई उत्तर नहीं था क्योंकि बात सही है। पति मरेगा अलग जाएगा, स्त्री मरेगी अलग जायेगी और पति आत्मा नहीं बन सकता है। अतः इन मनुष्यों के मल-मूत्र के शरीर को पति मानकर क्या प्रेम करना? ये संसारी पति बेचारा क्या प्रेम करेगा? एकमात्र तुम्हीं नित्यप्रिय हो और आगे कहती हैं –

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।

तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां धृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥

(भा. १०/२९/३३)

सांसारिक पति-पुत्रादि से क्या प्रेम करना? उनसे कितना भी प्रेम कर लो, उसका अन्त कष्ट ही रहता है। आज तक संसार में कभी भी किसी को स्त्री, पति, बेटा-बेटी से सुख नहीं मिला, अंत में कष्ट ही मिलता है और तुम कहते हो वापस लौट जाओ लेकिन हमारी तो प्रेम में वह महाभाव की स्थिति हो गयी है कि हम चाहें तो भी नहीं लौट सकती हैं। हमारे न पाँव काम कर रहे हैं और न हाथ फिर कैसे जाएँ? ये स्थिति सती स्त्रियों की नहीं होती, ये महाभाव की स्थिति है।

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥

(भा. १०/२९/३४)

इस तरह गोपियों की प्रेम में विचित्र स्थिति हो गयी थी। सती स्त्री तो अपने सतीत्व के प्रभाव से अपने शरीर में अग्नि प्रगट करके शरीर को जला देती है परन्तु गोपियाँ उससे बहुत आगे हैं, उनको अग्नि आदि प्रगट करने की जरूरत ही नहीं, वे तो अभी शरीर छोड़ देगीं। ये संसारी-प्रेम नहीं है, ये सच्चा प्रेम है। गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि तुम अगर हमको छोड़ भी दोगे फिर भी हम तुमको ध्यान-मार्ग से प्राप्त कर लेंगी। तुम्हारे इन चरणों को तो लक्ष्मी भी तरसती हैं। ये जो तुम्हारा रसमय विग्रह है, यह महासती लक्ष्मी के लिए भी दुर्लभ है। क्यों? क्योंकि तुम यहाँ ब्रज के दिव्य प्रेम में आ गए हो। महासती लक्ष्मी के प्रेम से बहुत ऊँचा है ये दिव्य प्रेम धाम, जो लक्ष्मी जी को भी नहीं मिलता है। निरन्तर वक्षस्थल पर निवास पाने के बाद इस दिव्य प्रेम के लिए लक्ष्मी जी भी तरसती हैं क्योंकि वे आर्यपथ को नहीं छोड़ सकती हैं परन्तु हमने आर्यपथ को छोड़ दिया; क्योंकि प्रेम

रसास्वादन के लिए आर्यपथ छोड़ना जरूरी है लेकिन ये सब लक्ष्मी जी नहीं छोड़ पायीं, इसलिए उनको ये रस नहीं मिला।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ
लब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥

(भा. १०/४७/६०)

जब ये कृपा लक्ष्मी जी को भी नहीं मिली है फिर और स्वर्ग की देवियों की तो बात ही छोड़ दो। रासलीला में गोपियों ने श्रीकृष्ण को लट्टू की तरह नचा दिया, ये अधिकार तो लक्ष्मी जी को भी नहीं मिला। इसीलिए उद्धव जी ने कहा कि जिस कार्य को लक्ष्मी जी नहीं कर पायीं उसे गोपियों ने करके दिखाया, आर्यपथ छोड़ दिया। श्रीकृष्ण के प्रति ऐसा इनका प्रेम था। जिस आर्यपथ को छोड़ना बड़ा दुस्त्यज है।

आदिपुराण में कथा आती है – अर्जुन ने एकबार श्रीकृष्ण से पूछा कि आपके अनेक भक्त हैं, उन सबमें आप अपना प्रिय सर्वोच्च किसको समझते हैं तो उन्होंने कहा –

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ निगूढ प्रेम भाजनम् ॥

अर्जुन ! गोपियों का अपने शरीर में अहंभाव बिल्कुल नहीं है, ये विदेह से भी आगे की स्थिति है। ये प्रेम की स्थिति होती है, सम्पूर्ण रूप से प्रेमास्पद को ही सब कुछ समझ लेना, विदेह में ज्ञानी लोग शरीर में रहते हुये शरीर से अलग रहते हैं, लेकिन गोपियाँ उनसे आगे हैं। कृष्ण बोले – आश्चर्य की बात तो ये है, उनका एक-एक अंग, उनकी एक-एक क्रिया मेरे लिए है – खाना-पीना, सोना-जागना, चलना-फिरना, श्रृंगार करना आदि।

अर्जुन – "गोपियों से आपका सम्बन्ध क्या है? "

श्रीकृष्ण – गोपियों से हमारा छः प्रकार का सम्बन्ध है –

सहाया गुरवः शिष्या भुजिष्या बान्धवाः स्त्रियः ।
सत्यं वदामि ते पार्थ गोप्यः किं मे भवन्ति न ॥

गोपियाँ हमारी लीला की सहायिका हैं, चाहे ब्रज-लीला हो, चाहे मथुरा-लीला हो, चाहे द्वारिका-लीला हो; सबमें गोपीजनों ने हमारी सहायता की है। इनकी सहायता के बिना न द्वारिका-लीला हो सकती थी और न मथुरा-लीला। दूसरा सम्बन्ध यह है कि ये हमारी गुरु हैं, तीसरा सम्बन्ध है कि ये हमारी शिष्या हैं। देखो, विचित्र सम्बन्ध है, जो गोपियाँ गुरु हैं वही चेली भी हैं, ये दुनिया में नहीं होता है, जो गुरु है वह गुरु ही रहता है लेकिन श्रीकृष्ण बोले कि यही तो विचित्रता हमारे और गोपियों के सम्बन्ध के बीच में है और बोले कि वे हमारी भोग्या हैं, बान्धव हैं और स्त्री भी हैं परन्तु दोनों में फरक है, यहाँ स्वकीया भी है परकीया भी है। भगवान् बोले – इन छः सम्बन्धों से भी आगे जो सम्बन्ध होता होगा, वह भी हमारा गोपियों से है। आगे क्या सम्बन्ध है? इसको कोई प्राणी समझ नहीं सकता है, हर गोपी श्रीकृष्ण की माँ भी है, एक विचित्र बात है, जो भुजिष्या स्त्री है, वही माँ भी है। इसको रसिकों ने लिखा है –

श्री वृन्दावन में मंजुल मरिवौ ।
जीवन्मुक्त सबै ब्रजवासी पद रज सौं हित करिवौ ।
<u>जहाँ श्याम बछरा है गायन चौंखि तृणनि कौ चरिवौ</u> ।
<u>हरि बालक गोपिन पय पीवत हरि आंको भरि चलिवौ</u> ।
सात रात दिन इन्द्र रिसानों गोवर्द्धन कर धरिवौ ॥

ये विचित्र धाम है वृन्दावन, यहाँ रहने वाले को हर ब्रजवासी की चरण-रज से प्रेम करना चाहिए, तब ब्रज-भाव आएगा। यहाँ कृष्ण ने बछड़ा बनकर हर गाय का दूध पिया है और महात्माओं ने जो लिखा है वह सत्य है। श्रीकृष्ण को यशोदाजी ने रोका कि माटी मत खाओ लेकिन वे नहीं माने, वे मिट्टी खाना चाहते थे, क्यों? क्योंकि इस ब्रज-रज में भक्त विचरा करते हैं और भगवान् सभी भक्तों की चरण-रज चाहा करते हैं। भगवान् ने भागवत में स्वयं कहा है –

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥

(भा. ११/१४/१६)

सारे संसार को तो मैं पवित्र करता हूँ और मैं स्वयं भक्तों के पीछे-पीछे घूमता हूँ ;ताकि उनकी चरण-रज मुझपर पड़ जाये, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ।

जब बछड़ा बन गए कृष्ण तो एक वर्ष तक भक्तों की चरण-रज खूब खाते रहे, हर गोपी का दूध भी पिया है, जब ब्रह्मा जी बछड़ा चुरा ले गए तो खाली बछड़ा ही नहीं बने थे, जो वत्सपाल)ग्वारिया (थे बछड़ा चराने वाले वे सब भी कृष्ण ही बने और छोटे-छोटे बालक बनकर घर गए तो हर गोपी का स्तन भी पिया। इसलिए ये विचित्र सम्बन्ध है। गोपियों के श्री कृष्ण ही सब कुछ हैं, श्रीकृष्ण बेटा भी हैं, पति भी हैं, बाप भी हैं, सब कुछ हैं। परन्तु इन सम्बन्धों को लौकिक बुद्धि से नहीं समझा जा सकता है कि जो पति है वह बेटा कैसे? जो बेटा है वह बाप कैसे? ये लौकिक बुद्धि से कोई कैसे समझेगा? लेकिन लीला दृष्टि से सब कुछ सम्भव है।

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् ।
योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥

(भा. १०/३३/३६)

गोपियों के पति श्रीकृष्ण हैं, उनकी माँ के पति भी कृष्ण हैं, कृष्ण ही उनके ससुर हैं और उनके बच्चे भी कृष्ण हैं परन्तु इसको कोई कैसे समझ सकता है? ये गोपी-प्रेम विचित्र है और वही गोपी-प्रेम कलियुग में मीराबाई ने करके दिखाया।

जिस कलियुग को बड़े-बड़े महापुरुष परास्त नहीं कर पाये, उसको एक स्त्री मीरा ने परास्त करके एकमात्र गिरिधर से प्रेम किया और किसी का शासन नहीं माना – न परिवार का, न राजवंश का, न राजसत्ता का, न समाज का, न देश का, न धर्म का, न लोक-परलोक का, कोई भी अंकुश मीरा ने नहीं माना, बस यही गोपी-प्रेम है। इसलिए गोपी-प्रेम को कौन समझ सकता है? उस गोपी-प्रेम को मीरा ने कलियुग में प्रगट दिखाया। इसीलिए

नाभाजी ने मीरा को वह सम्मान दिया, जो किसी भक्त को नहीं दिया लेकिन आजकल के दाम्भिक रसिक लोग मीराबाई के नाम से चिढ़ते हैं, उनकी निंदा करते हैं ;वे सब नाभाजी की बात को नहीं समझ सकते क्योंकि उनकी बुद्धि संकीर्ण है और जहाँ संकीर्णता है, वहाँ ये सब चीजें समझ में ही नहीं आयेंगी। मीरा इतनी निडर थी कि उसने गोपियों से भी ज्यादा यातनायें सहीं।

एक होता है ‘निडर ’और एक होता है ‘अतिनिडर ’यानी जहाँ भय नाम की चीज कभी थी ही नहीं, उसको अतिनिडर कहते हैं।“ रसिक जस रसना गायौ ”बस मीरा कृष्ण के यश को दिन-रात गाती रहीं। दुष्ट लोग भगवद्भक्तों को नहीं समझ सकते हैं, भगवद्-भक्तों को वास्तव में समझ पाना बड़ा कठिन है। उस समय तो मीरा ने कहा था –**“ लोग कहैं मीरा भई बावरी, सास कहै कुल नासी रे।”** सांसारिक लोग कहते थे कि मीरा पागल हो गयी है और सास कहती थी कि इसने हमारे कुल का नाश कर दिया। इसलिए भगवद्भक्तों को समझना बड़ा कठिन है। उन्होंने मीरा में दोष इसलिए देखा क्योंकि मीरा सुन्दर थी और दिन-रात साधुओं में नाचती थी। इसलिए बदनामी तो होगी ही क्योंकि एक सुन्दर स्त्री पुरुषों में नाच रही है। उस समय विशेष पर्दा था और महारानी थीं, तो बदनामी तो होनी ही थी। इसलिए सबने उनके आचरण पर दोष विचार किया और उनको मारने का प्रयत्न किया। कई तरह से मारना चाहा परन्तु कोई भी मीरा का एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर पाया। कितनी सत्यता थी उनकी भक्ति में कि सारी राज्यसत्ता विरोध में लग पड़ी लेकिन कोई एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर पाया। इसलिए नाभाजी ने उनके लिए निरअंकुश ’और ‘अति निडर ’शब्द का प्रयोग किया है –

‘निरअंकुशता ’का उदाहरण –

राणा जी मैं गोबिन्द के गुण गाणा।
राजा रूठै नगरी रूठै, हरि रूठ्याँ कहँ जाणा॥

राणा जी! चाहे राजा नाराज हो, चाहे नगर के लोग नाराज हों, मुझे इसकी बिल्कुल भी परवाह नहीं है, बस हमारे श्यामसुन्दर हमसे प्रसन्न रहें, इसलिए राणा जी! मैं तो अपने गिरिधर गोपाल के गुण गाऊँगी, उन्हीं को रिझाउँगी।

'अति निडरता 'का पहला उदाहरण –

'राणा भेज्यो जहर का प्याला
इमरित करि पी जाणा ।'

राणा जी ने मीरा को मारने के लिए विष का प्याला भेजा और मीरा उसे प्रभु का चरणामृत समझकर पी गयी और वह हलाहल विष उनकी भक्ति के प्रभाव से अमृत बन गया।

'अति निडरता 'का दूसरा उदाहरण –

'डबिया में भेज्या सर्प भुजंगम, सालिगराम कर जाणा ।'

राणा ने भयंकर सर्प एक डबिया में बन्द करके मीरा के पास भिजवाया और मीरा ने उसे शालिगराम समझकर के ग्रहण किया और सत्य ही वह शालिगराम बन गया। इसलिए नाभाजी ने ये सब शब्द मीरा के लिए प्रयोग किये' निरंकुश 'और 'अतिनिडर'।

आगे नाभाजी लिखते हैं –

भक्ति निसान बजायकै काहू ते नाहिन लजी ।
लोकलाज कुल श्रंखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥

मीरा ने लोक-लाज, कुल आदि की मर्यादाओं की सारी जंजीरों को तोड़ दिया। इस तरह उसने गिरिधर श्यामसुन्दर का इस कलियुग में भजन किया। नारायण स्वामी जी ने भी इसी बात पर एक बहुत बढ़िया दोहा लिखा है कि लोग भक्ति करने चलते हैं और संसार से शरमाते हैं, लज्जा करते हैं कि दुनिया क्या कहेगी –

चाखा चाहे प्रेमरस राखा चाहे लाज ।
नारायण प्रेमी नहीं बातन कौ महाराज ॥

जो दुनिया से डरता है कि दुनिया क्या कहेगी? वह प्रेमी नहीं है, वह तो मिथ्या बक-बक करता है, ऐसे ही हम जैसे लोग हैं केवल बातों के पक्के महाराज हैं। प्रेमी तो वह होता है जैसी मीरा थी "लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीरा गिरिधर भजी। "जिसने लोक-लाज को तिनका की तरह तोड़ दिया, जो लोक-लाज की सोचता है, वह प्रेमी कैसे हो सकता है? मीरा ने कभी भय नहीं सीखा।

मीराबाई का जन्म राठौरों की मेड़तिया शाखा में हुआ था। इस शाखा के प्रवर्तक थे श्री राव दूदा जी। इनके दूसरे बेटे थे राणा रतन सिंह, उनकी बेटी थी मीरा जी और इनकी माँ का नाम कुसुमकुंवरि था। मीराबाई का जन्म विक्रम संवत् १५५५ में जोधपुर राज्यान्तर्गत कुड़की नामक ग्राम में हुआ था। ये अवतरित थीं, गोपी का अवतार थीं।

इनके पूर्वजन्म का इतिहास इस प्रकार है –

द्वापरकाल में कृष्णावतार के समय एक गोपी थी, उसकी सास बड़ी कट्टर थी, कट्टर ही नहीं बड़ी कर्कश भी थी। वह अपनी बहू को श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं करने देती थी, उसने ऐसा उपाय किया कि हमारी बहू श्रीकृष्ण को न देख पाए; तो उसने अपनी बहू से कहा था कि एक नन्द का साँवरा सा लड़का है, उसको जो देखता है वह उसके रूप पर मोहित हो जाता है, ऐसी कोई नहीं जो उसकी मन-मोहनी से छबि से बच जाए।

इस कारण से वह बहू को कभी भी बाहर नहीं जाने देती थी और उस बहू को इतना डरा दिया था कि वह कभी ऊपर दृष्टि करके भी नहीं देखती थी परन्तु एक दिन वह गोपी नीचे सिर करके यमुना जी जा रही थी क्योंकि सास ने कह रखा था कि अगर ऊपर की ओर तूने दृष्टि की तो उसी दिन तुझे घर से निकाल दूँगी। श्यामसुन्दर उसके पीछे-पीछे घूमा करते थे कि यह एकबार सिर उठाकर हमें देख ले ;परन्तु वह ऊपर दृष्टि नहीं करती थी।

आली री या ब्रज में बसकें हँसके,
न चली मन मैं न शीश उठायौ ।
काली कालिन्दी के तीर गयौ,

गिर टीकौ लिलार कौ नेकु न पायौ ॥
हे री! लियौ हरि टेर कह्यौ या कौन कौ है,
आजु मैं परौ पायौ ।
मोह जंजाल पडौ री,
नन्दलाल सौं बोलन ही बनि आयौ ॥

अतः एक दिन जब वह यमुना जी नहाने जा रही थी, होनहार की बात उसका टीका)शीश फूल (गिर गया; पीछे से नन्दलाल आ रहे थे उन्होंने चुपचाप अपने पाँव से उसे दबा लिया। वह इधर-उधर ढूँढ़ती रही जब नहीं मिला तो जाने लगी तो नन्दलाल बोले – अरे, ये किसी का बहुत कीमती सोने का शीश फूल गिर पड़ा है, किसी चोर-चकोर को मिलता तो क्यों देता? पर मैं तो किसी की कोई वस्तु लेता ही नहीं हूँ, जिसका हो वह यहाँ से ले जाए और बोले कि चोरी करना तो मैं जानता ही नहीं हूँ, चोरी बहुत खराब काम है, इसलिए ये टीका जिसका हो वह ले जाए, मैं इसको रखूँगा नहीं। वह सुनती रही कि लोग तो कहते थे नन्द का लाला बड़ा चोर है परन्तु ये तो बड़ा धर्मात्मा है। उसने टीका लेने के लिए श्यामसुन्दर की ओर देखा, बस जिसने उस रूप को देखा है, वह उसको देखता ही रह गया। उसको ये कहना पड़ा कि ये टीका तो हमारा है, ये हमें दे दो, श्यामसुन्दर बोले – मैं इसीलिए तो खड़ा हूँ जिसका हो वह ले जाए। मैं तो दूसरे की वस्तु नहीं लेता हूँ। अब उसको लेने के लिए जाना पड़ा और उसने हाथ किया लेने के लिए तो श्यामसुन्दर ने अपना हाथ ऊपर कर दिया। बोले और ऊपर हाथ बढ़ाओ, तो उसने देखा उनकी मुस्कान, उनकी अदा, उनकी घुँघराली लटाएँ तो वह उनके रूप-सौन्दर्य को देखकर मोहित हो गयी और उसके ऊपर सास का जो नियंत्रण था वह सब भूल गयी।

दूसरी कथा है –

न चली हठ लालच लोचन सौं,
हठ मोचन कौ चहिनौ ही पर्यौ ।
रत्नाकर बंक बिलोकनि बानि,

सहाये बिना सहनौ ही पर्‌यौ ॥
उठते वे गात छुआय चले,
तब तो प्रण कौ ठयनौ ही पर्‌यौ ।
भरी आह कराह सुनो जू सुनो,
नन्दलाल सौं यह कहनौ ही पर्‌यौ ॥

एक गोपी थी, उसकी भी सास बड़े कर्कश स्वभाव की थी। वह अपनी बहू को श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं करने देती थी। सास के नियंत्रण के कारण वह श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं कर पाती थी। जब श्रीकृष्ण ने ब्रज में इन्द्र की पूजा बन्द करवाकर, गिरिराज जी का पूजन करवाया तो इन्द्र ने अपना अनादर समझकर ब्रज को नष्ट करने के लिए बड़े जोर की बारिश की, तो समस्त ब्रजवासी उससे बचने के लिए श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचे, श्यामसुन्दर ने ब्रजवासियों से कहा –

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥

(भा. १०/३०/२०)

ब्रजवासियो! डरो मत, ऐसा कहते हुए उन्होंने गिरिराज गोवर्द्धन को बाएँ हाथ की उँगली पर उठा लिया, तो सभी ब्रजवासी, गाय, ग्वाल सब उसके नीचे आ गए, उस बहू को भी अपनी सास के नियंत्रण में वहाँ जाना पड़ा परन्तु वह सास अपनी बहू को लेकर सबसे दूर खड़ी हो गई कि कहीं कृष्ण को हमारी बहू देख न ले। अतः जब गिरिराज जी की पूजा हुयी और पूजा से गिरिराज भगवान् प्रसन्न हो गए, उन्होंने आवाज लगाई कि मैं तुम सबकी पूजा से प्रसन्न हूँ, जिसको जो वरदान माँगना है, वह माँग ले। गिरिराज भगवान् को कृष्ण सहित सभी ब्रजवासियों ने प्रणाम किया और कहने लगे – "देखो-देखो गिरिराज भगवान् साक्षात् दर्शन दे रहे हैं, ये हमारे ऊपर उन्होंने बड़ी कृपा की।" हरिवंश पुराण में कथा आती है, गिरिराज जी ने कहा कि हे ब्रजवासियो! मैं ही तुम्हारा देव हूँ, जो माँगना हो माँग लो; तो ये बहू जो थी, बहुत दूर खड़ी थी इसने भी मन्नत माँगी कि हमारी सास तो बड़ी कर्कश है ये श्रीकृष्ण को देखने भी नहीं देती है, इसीलिए ये हमारा

जन्म व्यर्थ चला गया, अतः हे गिरिराज भगवान् ! मेरा जो अगला जन्म हो, तो हमको ऐसी शक्ति देना कि मैं सारे संसार के बन्धनों को तोड़कर केवल एकमात्र कृष्ण को भजूँ। इस तरह से वही गोपी यहाँ कलियुग में मीरा बनी, इस घटना को मीराबाई ने स्वयं एक पद में लिखा भी है –

बहुत दिना पै प्रीतम पाया बिछुड़न कौ मोहे डर रे ।
मीरा कहै अति नेह जुड्यौ मैं लियो पुरबलो वर रे ॥

"मैं पहले से ही वर माँगकर आयी हूँ। "ये उनकी आत्मकथा है। देखो, भजन करने की शक्ति भी भगवान् देता है, जीव क्या भजन करेगा? जीव भजन नहीं कर सकता। जो सोचता है कि मैं भजन करता हूँ वह बड़ा अज्ञानी है। अरे ! बिना भगवान् की कृपा के कोई एक कदम भी नहीं रख सकता इस रास्ते पर।

अति हरि कृपा जाहि पर होई ।
पाउँ देइ एहिं मारग सोई ॥

(रा.च.मा.उत्तर. १२९)

हम लोग क्या भजन करेंगे, बिना भगवान् की कृपा के एक कदम भी नहीं चल सकते, अगर चलेंगे भी तो गिर जायेंगे। इसलिए सुग्रीव ने कहा था कि प्रभो ! मैं गिर पड़ा था। मैं क्या भजन कर सकता हूँ?

बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी ।
मैं पावँर पसु कपि अति कामी ॥

(रा.च.मा.किष्कि. २१)

विषयों के आधीन देवता, मुनि, असुर, नर सब हैं, हे नाथ ! अब तुम कृपा कर दो तो मैं तुम्हारा भजन कर सकता हूँ, वरना हमारे बस का तो है नहीं और बोले –

यह गुन साधन तें नहिं होई ।
तुम्हरी कृपाँ पाव कोइ कोई ॥
अतिसय प्रबल देव तव माया ।
छूटइ राम करहु जौं दाया ॥

(रा.च.मा.किष्कि. २१)

कोई क्या भजन कर सकता है? हम जैसे मक्खी-मच्छर से भी ज्यादा छोटे व्यक्ति भजन क्या कर सकते हैं; ये तो महामूढ़ व्यक्ति सोचता है कि हम भजन कर रहे हैं। भजन की शक्ति प्रभु ही देता है, तब जीव भजन करता है। अभी कहीं जा रहे हैं थोड़ी देर में प्राण ही निकल जाएँ तो जीव क्या कर सकता है? जीव कुछ नहीं कर सकता है, भजन क्या कोई करेगा? भजन की शक्ति भगवान् देता है, भगवान् ने मीरा को भी शक्ति दी और प्रारम्भ से ही चमत्कार हुआ जन्म से ही इनके नयन गिरिधारी से लग गए।

'मेरतौ जनम भूमि झूमि हित नैन लगे-
पगे गिरिधारीलाल पिता ही के धाम में।'

मीरा जब छोटी-सी बच्ची थी तभी से गिरिधारीलाल से इनकी आँख लग गयी थी। ये प्रियादास जी का कवित्त है, ये सब प्रामाणिक है। जिस पर कृष्ण-कृपा होती है वही प्रारम्भ से भजन में रमता है; लेकिन फिर भी कोई न कोई निमित्त बनता ही है। इनके पिता राणा रतन सिंह अपनी स्त्री कुसुमबाई को सन्तों के पास जाने से रोकते नहीं थे इसलिए मीरा की माँ कुसुमबाई भी बड़ी भक्ता थीं, आज भी इनका जो महल है, उससे लगा हुआ मंदिर है और संतशाला है, जिससे संतों को दूर न रुकना पड़े, ऐसी इनकी माँ भक्त थीं, संत-सेवा निष्ठ थीं। मीराबाई भी वृन्दावन के संतो से बड़ा प्रेम करती थीं, स्वयं उन्होंने लिखा है –

जोगी आया जोग करन को तप करने सन्यासी।
हरि भजन कूँ साधु आया वृंदावन के वासी॥

इनके महल में साधु तो बहुत आते थे क्योंकि इनकी माँ भक्त थीं, साधु-सेवा करती थीं परन्तु जब वृन्दावन का कोई साधु जाता था तो मीरा उनको देखकर खुश हो जाती थी और उनसे कहती – बाबा ! मुझे गिरिधारीलाल की लीलाएँ सुनाओ।

एक बार मेड़ते में एक संत पधारे ;वे कृष्ण-भक्त थे और गिरिधरलाल की सेवा करते थे। वे बड़े अनुरागी संत थे, उनका महल में भी आना-जाना था ; वे मीरा को देखकर बड़े प्रसन्न होते थे क्योंकि मीरा उस समय छोटी-सी

बच्ची थी और बड़ी सुन्दर थी हीं लेकिन बड़ी दीप्तिमान भी थीं। जब वे अपने गिरिधारीलाल की सेवा करते तो मीरा उनके समीप बैठकर एकाग्रता पूर्वक देखतीं इसलिए भगवान् की सेवा में बचपन से ही मीरा का अनुराग देखकर वे मीरा पर प्रसन्न रहते थे, मीरा का भी उनसे बड़ा लगाव हो गया था। कुछ दिन रहकर जब वह जाने लगे तो उनको देखकर मीरा रोने लगी और उसने यह पद गाया –

जोगी मतजा मतजा मत जा पाँव परूँ मैं तेरी ।
प्रेम-भक्ति को पेंड़ों हि न्यारो, हमकूँ गैल बताजा ॥
अगर चंदन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा ॥
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगाजा ॥
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिलाजा ॥

इस पद से पता चलता है कि उनकी संतों-भक्तों के प्रति कैसी निष्ठा थी? मीरा बोली –" हे जोगी ! तुम मुझे छोड़कर नहीं जाओ, अगर जाना ही है तो जाने के पहले तुम हमें मार देना, अगर जाना ही चाहते हो तो पहले एक चिता बनाओ और उसमें मुझे भूँजकर, मारकर तब जाना।" ऐसा था मीरा का भक्तों से प्रेम। जो सच्चा भक्त होता है वह भगवान् से भी ज्यादा भक्तों से प्रेम करता है और जब भक्त बिछुड़ता है तो उसको प्राण जाने जैसा कष्ट होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है –

बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

(रा.च.मा.बाल. ५)

“भक्त जब बिछुड़ता है तो प्राण हर लेता है और दुष्ट जब मिलता है तो प्राण हर लेता है। ”इसलिए दुष्ट का संग कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका संग करने से सिर्फ दूसरों की निन्दा ही सुनने को मिलती है, जिससे वह हमारी श्रद्धा का नाश कर देता है इसलिए गुसाईं जी ने लिखा कि दुष्ट मिला और तुम्हारी मृत्यु हो गयी; क्योंकि वह पचास निंदा, अभाव की बात सुनाकर के हमारा नाश कर देगा। अतः दुष्ट मिलने पर प्राण हर लेता है और सन्त वही है जो बिछुड़ने पर प्राण हर लेता है।

मीरा का संतों में ऐसा प्रेम था जबकि उस समय मीरा छोटी-सी बच्ची थी; मीरा को गिरिधारीलाल उन्हीं सन्त से मिले थे। वे जब गिरिधारीलाल की सेवा करते तो मीरा प्रेमपूर्वक देखती थी और धीरे-धीरे उसका गिरिधारी लाल से प्रेम हो गया। वे जब जाने लग गए, तब मीरा बहुत रोयी और मचल गयी कि मुझे गिरिधारीलाल दे दो, नहीं तो मैं मर जाऊँगी और रोते-रोते वह मूर्छित हो गयी। कुसुमबाई ने भी कहा – बाबा! मीरा मूर्छित हो गयी है, उसे गिरिधारी लाल दे दो। उन्होंने सोचा – "वृन्दावन तो जा ही रहे हैं, हम तो और ठाकुर जी भी ले लेंगे लेकिन इसको अगर गिरिधारी लाल नहीं दिए तो ये लड़की सच में मर जायेगी।"

अतः उन्होंने मीरा के प्रेम को देखकर अपना नियम तोड़ दिया और अपने प्राण प्यारे आराध्य ठाकुर श्री गिरिधारी लाल मीरा को दे दिए।

मीरा ने दौड़कर के गिरिधर गोपाल को हृदय से लगा लिया और नाचने लगी –

मैं तो थारे दामन लगी जी गोपाल।
किरपा कीजो दर्शन दीजो, सुध लीजो तत्काल॥
गल बैजंती माल बिराजे, भक्तन के रछपाल॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दर्शन भई है निहाल॥

मीरा को उस विग्रह में साक्षात् ठाकुर जी का दर्शन होता था। वल्लभ सम्प्रदाय में एक सिद्धान्त है – भगवान् के दो रूप होते हैं, एक भक्तानुग्रह-कारक और दूसरा सर्वानुग्रह-कारक; जो सबको मूर्ति-रूप दिखाई पड़ता है ये तो सर्वानुग्रह कारक है और जो विशेष भक्तों को विग्रह में साक्षात् भगवान् का दर्शन होता है ये भक्तानुग्रह-कारक रूप होता है। मीरा ने कृष्ण-यश भी गाया और भक्तों का यश भी गाया, उन्होंने संतों की महिमा का भी गान किया। उनका भक्तों-संतों में कितना प्रेम था इसका अनुमान उनके पदों से लगाया जा सकता है –

छांड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठ-बैठ लोक लाज खोई॥

अथवा

साधु – संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ ।
तन-धन मेरो सबहि जावो, भलो मेरो सीस लहूँ॥

मीरा जी कहती हैं – साधु संग)भक्तों का संग(करने के लिए चाहे प्राण भी चला जाय तो भी उनका संग नहीं छोड़ो। ये उन्होंने कहा ही नहीं अपितु करके भी दिखाया 'भलो मेरो सीस लहूँ' भले मेरा शीश कट जाये किन्तु मैं भक्त-संग, साधु-संग नहीं छोड़ सकती। इसीलिए नाभा जी ने लिखा कि मीरा ने भक्त और भगवान् दोनों का यश गाया। यहाँ तक कि एक उनका प्रसिद्ध पद है, जब वे कुछ बड़ी हो गयी हैं तो उनका पागलपन और बढ़ गया। रात में भी सत्संग में जाने लगीं; इसीलिए उनको प्रेम-दिवानी कहा गया, कृष्ण-प्रेम का दीवानापन था, पागलपन था। रात को जब जाने लगीं तो उनकी माँ ने कहा – बेटी! रात को जाना लोक विरुद्ध है, तू एक राजकुमारी है, तेरे लिए तो बहुत ज्यादा अपवाद की बात बन सकती है। माँ रोकती है – "बेटी! अब तू छोटी बच्ची नहीं रही, बड़ी हो गयी है, सयानी हो गयी है, अब तुझे इस तरह रात्रि में अकेले नहीं जाना चाहिए, इतनी घनघोर रात्रि है, इस समय संसार के सभी लोग आनन्द में सो रहे हैं, ऐसे में तू क्यों रात्रि में जागती है)बाहर घूमती है (तेरे इस तरह जाने से कलंक लगता है।" तो मीरा कहती है –

तू मत बरजै माई री (मैं तो) साधा दरसन को जाती ।
माई कहै सुन धींमड़ी काहै गुण फूली,
लोग सोबैं सुख नींदड़ी क्यों रैणज भूली ।
गैली दुनियां बावड़ी जाको राम न भावै,
ज्यां रे हिरदय हरि बसै त्यां कूं नींद न आवै ।
चौमासे की बावड़ी त्यां का नीर न पीजै,
हरि नाले अमरित झरै त्यां की आस करीजै ।
रूप सुरंगा राम जी मुख निरखत जीजै,
मीरा व्याकुल विरहिणी अपनी कर लीजै ॥

"हे माँ! तू मुझे साधु-दर्शन के लिए जाने से क्यों रोकती है। माँ, ये दुनिया पागल है, इन दुनियावालों को कृष्ण से प्रेम नहीं है, इसलिए ये चैन की नींद सो रहे हैं। माँ! ये रात सोने के लिए नहीं है, रात तो कृष्ण को पुकारने के लिए है। जिसको कृष्ण से प्रेम है, जिसके हृदय में श्रीहरि बस गये हैं)श्रीहरि का प्रेम उत्पन्न हो गया है (बता माँ! उसे नींद कैसे आ सकती है?

माँ! संसार की मर्यादाएँ तथा सांसारिक विषय, ये चौमासे का गन्दा पानी है, इसमें नहीं फँसना चाहिए। श्रीकृष्ण-स्मरण अमृत का सरोवर है, उसका जल पीना चाहिए अर्थात् उनका गुणगान करना चाहिए। जहाँ कृष्ण-गुणगान होता है वहाँ अमृत झरता है, उसकी आशा में जीना चाहिए यानी दिन-रात कृष्ण-कीर्तन कृष्ण-गुणगान करना चाहिए।" यद्यपि इनकी माँ कुसुमबाई बहुत बड़ी भक्ता थीं और रानी भी थीं परन्तु मीरा की तरह दीवानी नहीं थीं। इसलिए लोक-लाज की मर्यादा को वे तोड़ नहीं सकती थीं परन्तु मीरा में प्रेम का दीवानापन था, मीरा का ये पागलपन उनकी माँ भी नहीं रोक पायी ;मीरा ने साफ मना कर दिया कि ये संसार की मर्यादा, लोक-लाज – ये सब गन्दा पानी है, मैं तो इसको नहीं पियूँगी।

मीरा की आत्मकथा उनके पदों में है, वे कृष्ण-प्रेमोन्माद में न रात देखतीं और न दिन; बस यही गोपी-प्रेम का स्वरुप है। संसार में तो लोग कामोन्माद में काम कथा, काम वार्ता में रात-रात भर जग लेते हैं ;ये घर-घर

कामोन्माद है, टेलीविजन देखते हैं घर बैठे-बैठे, इसी कामोन्माद में सारा जीवन चला जाता है परन्तु मीरा का जीवन कृष्ण-प्रेमोन्माद का था। इसलिए इनके प्रेम को समझना बड़ा कठिन है, भक्तिहीन मनुष्य इसको नहीं समझ सकता है।

इसीलिए नाभाजी ने लिखा है कि भक्तिहीन लोग "दुष्टनि दोष विचारि" दोष की कल्पना करते थे क्योंकि जवान थीं। लोग उनका रात-रात भर साधु-संतों में जाना अच्छा नहीं समझते थे परन्तु उनकी महिमा को नाभाजी ने समझा इसलिए उन्होंने कहा कि मीरा साक्षात् गोपिका-प्रेम का स्वरुप थी। उनके पदों में जो दर्द है, विरह है उसका राजस्थान ही नहीं बल्कि सारे भारत पर प्रभाव पड़ा। हजारों लड़कियों के नाम मीरा रखे गए और उनके चरित्र पर मीरा के विरह का प्रभाव पड़ा ;जिसका अनुभव सभी करते हैं।

वे दिन में नहीं, रात्रि को भी कृष्ण-विरह में घूमती थीं; इसलिए उन्हें लोग बावरी कहते थे, ये उन्होंने स्वयं अपने पदों में लिखा है। लोग बावरी ऐसे ही नहीं कह देते थे, कुछ न कुछ पागलपन तो दिखाई पड़ता होगा। लोग बावरी, कुलनाशिनी, कलंकिनी कहते थे, ये डिग्री उनको समाज ने दी थी और इस डिग्री को उन्होंने सहर्ष स्वीकार भी किया। प्रेमी लोग ऐसी ही डिग्रियाँ लेते हैं जैसी मीरा ने ली। कोई कुछ भी कहता रहे, भगवद्-प्रेमियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मीरा ने भी निन्दकों की परवाह नहीं की और गाया –

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ ।
गिरिधर म्हारो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै तब ही उठ जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।
रैण दिनां वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे दे सोई खाऊँ ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ ।
जहाँ बिठावै तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ ॥

"मैं तो अब अपने प्यारे गिरधरलाल के घर जाऊँगी। मेरा एकमात्र प्रियतम गिरधर है, उनकी रूप-माधुरी पर मैं मोहित हो जाती हूँ, इसलिए मुझे पता ही नहीं पड़ता कब रात हुयी, कब दिन हुआ।" मीरा पागल की तरह घूमती थी – न दिन देखती थी, न रात। उनका जीवन कलियुग में गोपी-प्रेम का साक्षात् नमूना है, कैसा पागलपन था – न खाने की चिन्ता, न पीने की ;न पहनने-ओढ़ने की ;जैसे कोई पागल होता है उसे किसी वस्तु की फिकर नहीं रहती, वैसी ही कृष्ण-प्रेम में मीरा की स्थिति थी। हम ये कह सकते हैं कि सर्वात्मभाव की शरणागति की प्रतिमा थी मीरा। 'जहाँ बिठावै तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ ।' क्या बात है, बड़ी बेजोड़ कड़ियाँ हैं, मीरा के ये शब्द ही संसार से अलग हैं। बोलीं – "हमारी अलग कोई सत्ता नहीं है, अगर मेरे गिरिधारी मुझे बेचेंगे तो मैं बिक जाऊँगी।"

मीरा ने कोई कुटिया नहीं बनाई थी, आश्रम नहीं बनाया था। वे जीवनभर पागलों की तरह रहीं। ये उन्माद था, इस प्रेमोन्माद को भावहीन व्यक्ति कैसे समझ सकता है? जैसे चैतन्य महाप्रभु जी के उन्माद को कोई श्रद्धालु गौड़ीय भक्त ही समझ सकता है कि उनके अन्दर कैसा उन्माद था? रहते तो थे वे नीलाचल में लेकिन नीलाचल नाममात्र था, वे निरन्तर ब्रज-भावनाओं में डूबे रहते थे। महाप्रभु जी ने एक बार चटक पर्वत देखा, उस समय चाँदनी रात थी, वे उस पर्वत को गिरिराज गोवर्द्धन समझकर दौड़ गए कि देखो, गिरिराज पर युगल-सरकार का विहार हो रहा है, ऐसा उनका प्रेमोन्माद था ;जबकि हम जैसे लोग गिरिराज जी परिक्रमा देने जाते हैं फिर भी हमारे हृदय में कोई भाव नहीं आता और वे नीलाचल में रहकर भी गिरिराज जी में रह रहे हैं।

एक बार महाप्रभु जी समुद्र किनारे पहुँचे, समुद्र के नीले पानी को देखा तो उसी समय नीले जल को देखकर के उन्हें प्रेमोन्माद में यमुना जी की याद आयी और समुद्र को यमुना जी सकझकर उसमें कूद पड़े। इन सब बातों को कौन समझ सकेगा? मीलों दूर समुद्र में बहते चले गए, अब हम जैसे भावहीन लोग तो तर्क करेंगे कि डूबे नहीं, मगरमच्छ ने नहीं खाया,

अनेक शंकायें मन में आयेंगी लेकिन तर्क वाला इसको नहीं समझ सकता है। इसी तरह से तर्क वाला व्यक्ति मीरा की स्थिति को नहीं समझ सकता है। जिसके हृदय में तर्क है, जिसके हृदय में भाव नहीं है, वह इन भक्तों के चरित्रों को कैसे समझ सकेगा, समझ ही नहीं सकता। महाप्रभु जी जब झारखण्ड से ब्रज की ओर आ रहे थे तो रास्ते में जंगल पड़ते थे, उनमें सिंह मिलते थे और उनके पाँव की ठोकर से ही सिंह भी नृत्य करने लग जाते थे, मदमाते हाथी भी उनके अंगस्पर्श से प्रेम में झूमने लग जाते थे ;ये सब कौन समझ पायेगा? कोई नहीं समझ सकता। अतः भक्तों के इन चरित्रों को महापुरुष लोग ही समझ सकते हैं। जैसे नाभाजी ने मीरा को समझा और उनके बारे में लिखा कि मीरा तो साक्षात् गोपी है।

"सदृश गोपिका प्रेम प्रगट कलिजुगहिं दिखायौ ।"

मीरा के पद ही उनकी आत्मकथा हैं। ऐसी कविता विश्व में मेरी समझ में नहीं है क्योंकि भगवद्-यश तो उन्होंने गाया किन्तु अपनी व्यथा, अपनी पीर उसके साथ गायी। जैसे सूर, तुलसी आदि ने भगवल्लीला का गान किया, ऐसी इनकी शैली नहीं थी। ये गोपी अपने प्रेम, अपनी पीर को लेके चलती थी और इसलिए इनका हर पद इनकी आत्मकथा है। इनकी शैली संसार के सभी कवियों से भिन्न है। यद्यपि सूरदास जी के विनय के पदों में उनका अपना दैन्य प्रगट होता है लेकिन वह इस ढंग का नहीं है। वह तो हम जैसे साधकों के लिए एक आदर्श है, एक शिक्षा है। लेकिन मीरा जी की शैली केवल इतनी है – जो उन पर बीता, वह उन्होंने आत्मकथा रूप में अपना दर्द, अपनी भावनाएँ पदों में व्यक्त कीं। ऐसी शैली संसार में कहीं नहीं है और उनका अपने और गिरिधारी के अलावा किसी भी शिक्षा से कोई मतलब नहीं था, न कोई सिद्धान्त से मतलब, किसी से कुछ प्रयोजन नहीं था। उनका केवल अपने गिरिधर से प्रयोजन था। उनका अपने गिरिधर के साथ चोली-दामन का साथ रहा, जैसी प्रीति, जैसी अनुभूति उन्हें होती गयी; वैसे ही वे पद गाती गयीं। जैसे ही मीराबाई बड़ी हुयीं तो एक समस्या आ गयी। अब घर के लोग उन्हें साधु-संग करने से रोकने लग गए; माँ ही रोकने लगी कि बेटी ! अब तू जवान हो गयी है, अब तू साधु-संग में मत जा

परन्तु उनकी बात को मीरा ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि मीरा ने जीवन में किसी परिस्थिति से हार मानना नहीं सीखा। मीरा किसी भी प्रकार के अंकुश को नहीं सह सकती थीं और न उनके जीवन में कोई अंकुश रहा।

उनका एक विचित्र प्रकार का व्यक्तित्व था, जो कि एक स्त्री के लिए असम्भव है क्योंकि स्त्री-शरीर को हमेशा पराधीन ही रहना पड़ता है लेकिन मीरा के अन्दर सैकड़ों पुरुषों से भी ज्यादा स्वतन्त्रता थी। उन्होंने न तो किसी का भय माना, न अंकुश माना। जब थोड़ी बड़ी हुयीं तो बाधाएँ आने लग गयीं। सबसे पहले माँ ने ही कहा कि बेटी! अब तुझे रात को कहीं नहीं निकलना है। मीरा ने माँ को डाँट दिया, माई री! मुझे क्यों रोकती है? अपने माँ-बाप से उनको टक्कर लेनी पड़ी।

ये नारी-शरीर ही ऐसा है कि इसको स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती है, इसकी बनावट ऐसी है कि इसमें अनेकों तरह के भय रहते हैं लेकिन किसी भी प्रकार के भय को मीरा ने स्वीकार नहीं किया। ऐसा स्त्री-शरीर में नहीं हो सकता है। वे जंगलों में चाहे जहाँ अकेले निडरता के साथ चलीं जाती थीं। चित्तौड़ से अकेले ब्रज-वृन्दावन में आयीं, अकेले राजस्थान पार करके द्वारिका गयीं; न कोई साथी न संगी। इससे पता पड़ता है कि जीवन में किसी का भय उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उसका कारण था उनके अन्दर भावनाओं का ऐसा वेग था, उसे सच्चाई कह सकते हैं या वेग कह सकते हैं या शक्ति कह सकते हैं। अगर भावना में सत्यता है तो अवश्य रक्षा होती है ; यदि भावना में शुद्धता है तो उसको आज भी कोई संसार में गिराने वाला नहीं है।

महारानी द्रौपदी जी के जीवन की एक घटना है। पाण्डवों को राज्य छोड़कर तेरह वर्ष के लिए वन जाना पड़ा, जिसमें एक वर्ष तक अज्ञातवास में रहना था, तो एक वर्ष तक वे द्रौपदी सहित विराट नगर में वेष बदलकर छिपकर रहे। 'युधिष्ठिर' राजा विराट के पासा खिलाने वाले नौकर बने, भीमसेन रसोईया बने, अर्जुन को श्राप था तो वे नृत्य सिखाने वाले हिजड़ा बन गए, नकुल और सहदेव अश्वरक्षक (घोड़ों के पालक) बने और द्रौपदी

महारानी सुदेष्णा की परिचारिका (सेविका) बनीं। द्रौपदी बहुत सुन्दर थीं क्योंकि अग्नि कुण्ड से प्रगट हुयी थीं। महारानी सुदेष्णा का भाई था कीचक, जिसमें दस हजार हाथियों का बल था, उसका सारे महल में दबदबा था, उसी के बल से राजा विराट राज्य करते थे। वह द्रौपदी के रूप पर आसक्त हो गया था, एक दिन उसने अपनी बहन सुदेष्णा से कहा कि द्रौपदी को मदिरा का पात्र लेकर हमारे कक्ष में भेजो, बहन डर के कारण कुछ नहीं कह पाई क्योंकि उससे सब डरते थे।

सुदेष्णा ने कहा – सैरंध्री (द्रौपदी) आसव का पात्र लेकर हमारे भाई को दे आओ, द्रौपदी समझ गयी और बोली – "महारानी जी, मैं आपकी नौकरानी हूँ, मैं किसी पुरुष के पास अकेले कैसे जा सकती हूँ? " उन्होंने कहा – "तुम पात्र लेकर जाओ, हमारी आज्ञा है।" द्रौपदी कुछ नहीं बोल पाई लेकिन चलते-चलते ये बात उसने जरूर कही कि महारानीजी ! अगर किसी ने मेरे ऊपर कुदृष्टि की तो फिर वह बच नहीं सकता है। रानी हँस गई – "अरे, क्या कहती है तू, कीचक के समान योद्धा सारे संसार में नहीं है।" द्रौपदी बोली – "महारानी जी ! हमारे पाँच पति गन्धर्व हैं, वे आकाश में गुप्त रूप से रहते हैं, संसार का बड़े से बड़ा योद्धा भी उनके सामने कुछ नहीं ;आप सोच लीजिये।" रानी बोली – "तू जा।" द्रौपदी गयी तो कीचक ने उसे पकड़ना चाहा द्रौपदी ने सूर्य की ओर देखा, उसी समय सूर्य ने एक बलवान अदृश्य रूप से गन्धर्व भेजा और उसने उठा के कीचक को फेंक दिया और द्रौपदी की लज्जा की रक्षा की। अगर भावनाओं में सच्चाई होती है तो चरित्र की रक्षा दैव करता है, संसार की कोई शक्ति उसका कुछ नहीं कर सकती। मीरा के अन्दर ये शक्ति थी। इसका प्रमाण है, उनके बारे में वृन्दावन के रसिक हरिराम व्यास जी ने लिखा है कि उनका कैसा दिव्य भाव था –

'मीराबाई बिन को संतन पिता जान उर लावै ।'

मीरा हर सन्त को पिता के समान समझकर छोटी बच्ची की तरह उनकी गोद में बैठ जाती थीं, लिपट जाती थीं, शुद्ध पिता का भाव रहता था। अपने को शिशु समझती रहीं, जैसे एक शिशु होता है – निर्मल भाव से

देखता है, निर्मल भाव से बैठता है, निर्मल भाव से लिपटता है, ऐसी निर्मलता, ये मीरा का व्यक्तित्व था। बिल्कुल गंगा की तरह पवित्र थीं। उनके जीवन में कोई अंकुश नहीं था, कोई मर्यादा-फर्यादा का बन्धन नहीं था, अब पुरुषों से लिपट जाना, ये कोई मर्यादा है? लेकिन उनका ऐसा विशुद्ध भाव था, उसमें मर्यादा की कोई जरूरत ही नहीं है, अंकुश की कोई जरूरत ही नहीं है परन्तु फिर भी अंकुश आये सामने, लोगों ने उन्हें मारने का प्रयत्न किया, उन्हें कितनी बार मौत का सामना करना पड़ा लेकिन उन्होंने अपनी भावना की सच्चाई के कारण सब परिस्थितियों को जीता।

बचपन में उनके साथ एक घटना घटी। जब वे छोटी-सी बालिका थीं ; वे विवाह आदि नहीं जानती थीं क्योंकि राजमहल में बहुत पहरा रहता है। विकृति के अवसर कम रहते हैं। एक दिन महल के छत पर मीरा अपनी माँ की गोद में बैठी थीं। रास्ते से कोई राजघराने की बारात निकल रही थी, इनकी माँ उस बारात को देख रहीं थीं। तो मीरा ने कौतूहलवश पूछा – "माँ ! ये क्या है? " माँ ने कहा कि बेटी ! ये बारात है। माँ ! ये बारात क्या होती है? देखो बेटी ! ये जो बीच में सबसे ऊपर मुकुट पहने हुए घोड़े पर बैठा है, ये दूल्हा है। माँ ! ये कहाँ जा रहा है? इसका विवाह होगा किसी लड़की से, वह इसकी दुल्हन बनेगी; फिर क्या होगा माँ? फिर दोनों साथ रहेंगे, विवाह होने के बाद दोनों को साथ रहना पड़ता है। मीरा बोली – माँ ! मेरा दूल्हा कौन है?

उन्होंने उपहास में श्रीकृष्ण की ओर इशारा करते हुए कहा – बेटी ! ये गिरिधर ही तेरे दूल्हा हैं। अच्छा माँ ! सुनते ही मीरा ने घूँघट निकाल

लिया। इस घटना का मीरा के ऊपर बड़ा असर पड़ा और वे उसी दिन से गिरिधर को अपना पति मानने लगीं।

कुछ वर्ष बीत जाने के बाद जब वे बड़ी हुयीं, तो राजमहल में उनके विवाह की चर्चाएँ चलने लगीं। इस बात पर विचार चलने लगा कि मीरा का विवाह किसके साथ किया जाए, उस समय भारत में सबसे बड़ी चित्तौड़ की गद्दी थी। उन्होंने वहाँ मीरा की सगाई का समाचार भेजा, उसको सिसौदिया वंश बोला जाता था, उस समय वहाँ राणा संग्राम सिंह राज्य करते थे, वे भी मीरा की ख्याति, उनके रूप-गुणों की चर्चा सुन चुके थे। अतः वे स्वयं अपने बड़े बेटे भोजराज का विवाह मीरा से कराना चाहते थे, भोजराज बड़ा शूरवीर था।

जब महल में ये चर्चा चल रही थी तो किसी सहेली ने जाकर मीरा से कहा – मीरा ! तेरे विवाह की चर्चा चल रही है। मीरा बोली – मेरा विवाह तो हो चुका है, मेरी माँ ने मुझसे कहा था कि गिरिधर ही तेरे पति हैं फिर मेरे दूसरे विवाह की चर्चा क्यों चल रही है? मीरा दौड़ती हुयी अपनी माँ के पास गयी और बोली – "माँ ! मैं ये क्या सुन रही हूँ, मेरे विवाह की चर्चा चल रही है।" माँ बोली – "हाँ बेटी ! अब तू बड़ी हो गयी है, तेरा विवाह तो करना ही पड़ेगा।" परन्तु माँ ! तू तो कहती थी कि मेरा दूल्हा गिरिधर है। हाँ बेटी ! गिरिधर तो सबके दूल्हा हैं लेकिन दुनिया के हिसाब से विवाह तो करना पड़ेगा तुझे। उस समय मीरा ये पद गाया और बोलीं –" मेरा तो विवाह हो गया है माँ ! "सच्ची घटना थी स्वप्न में ठाकुर जी आये थे और उन्होंने मीरा का वरण किया ;ये सारी लीला उन्होंने इस पद में गायी है –

माई म्हाने सपने में बरी गुपाल।
राती पीती चूनर ओढ़ी, मेंहदी हाथ रसाल॥
काँई और कूँ बरूँ भाँवरी, म्हाँ को जग जंजाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करी सगाई हाल॥

मीरा अपनी माँ से बोली – माँ ! मैं सत्य कह रही हूँ, मेरा तो गिरिधर के साथ विवाह हो गया है। माँ बोली – तू झूठ कह रही है। मीरा बोली – नहीं

माँ! जैसे विवाह होता है, वैसे ही सपने में मुझे चूनरी उड़ाई गयी, हाथों में मेंहदी लगाई गयी और गिरिधर से मेरा विवाह हुआ। माँ! जब हमें गिरिधर मिल गए तो मैं और दूसरे पुरुष के साथ कैसे भाँवर दूँगी, अब कोई संसारी मनुष्य मेरा पति नहीं हो सकता। ये सब संसार एक जंजाल है, संसारी दूल्हा आया और ले गया, ये सब जंजाल में मैं नहीं फँसूँगी।

ऐसे वर को क्या बरूं, जो जनमे और मर जाय।
वर तो बरूँ मैं साँवरा, म्हारौ चुड़लौ अमर है जाय॥

आखिर में जब बहुत बात बढ़ गयी तो मीरा के माँ-बाप सोचने लग गए कि ये तो बंधन मानती नहीं, इसकी जल्दी सगाई करनी चाहिए। मीरा का तो वही रवैया था, रात में चले जाना, जरा-भी कोई बन्धन नहीं मानना। जब उनके विवाह की चर्चाएँ और ज्यादा चलने लगीं तो फिर उन्होंने अपनी सहेलियों के सामने एक पद गाया और उसमें कहा –

बाला मैं वैरागण हूँगी।
जिन भेषां म्हारो साहिब रीझे, सोही भेष धरूँगी॥
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।
जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी॥
गुरु के ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।
प्रेम-प्रीत सूं हरिगुण गाऊँ, चरनन लिपट रहूँगी॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, साधाँ सँग रहूँगी॥

ये निश्चय उन्होंने पहले से किया था। वे साधु-सन्तों को देखती थीं कि इसी वेष से भगवान् रीझते हैं। इसीलिए बोलीं – हे बाला! मैं विवाह नहीं करूँगी, वैरागिन बनूँगी लेकिन केवल वेष की बाई नहीं बनूँगी, भीतर से बनूँगी ;शील, संतोष हृदय में धारण करूँगी। संतोष जब आ जाता है तो काम कभी नहीं सताता है, भूख में काम सताता है संतोष में नहीं।

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

(रा.च.मा.उत्तर. ९०)

जिसके अन्दर संतोष आ गया, उसको काम कभी नहीं सताएगा। कितना ज्ञान था मीरा को, उन्होंने कहा – मैं ऐसी बाई नहीं बनूँगी, कि इधर झाँका, उधर झाँका। समता को पकड़ के रखूँगी।" समत्वं योग उच्यते" हम लोगों की तरह नहीं कि जनम बीत गया लेकिन मन में समत्व नहीं आया। एक मीरा का लक्ष्य है कि मैं समता को पकड़ लूँगी ऐसी बाई बनूँगी और माया से जो परे है, उस प्रभु का ध्यान धरूँगी। सन्तों में उनकी कितनी निष्ठा थी, मैं वहाँ जाऊँगी और प्रभु के गुण गाऊँगी और सब संतों के चरणों में लिपट जाऊँगी। और आगे कहती हैं – इस शरीर के रोम-रोम को मैं कृष्ण-भाव से भर दूँगी। जब शरीर के रोम-रोम में कृष्ण रहेंगे तो काम, क्रोध, लोभादि कहाँ से आएँगे? इस शरीर की मैं कींगरी (वाद्ययंत्र) कर दूँगी। क्या दिव्य भाव है। हम जैसे लोग इस शरीर को भोग का साधन बनाते हैं, लेकिन मीरा बोली कि मैं शरीर को कींगरी अर्थात् तपमय बना दूँगी। ये महल-वहल में मैं नहीं रहूँगी, उनका शुरू से लक्ष्य था' साधाँ सँग रहूँगी। 'सन्तों के संग में रहूँगी क्योंकि उनका संग करने से कृष्ण-कथा सुनने को मिलती है।

इनकी माँ कुसुमबाई और पिता राणा रतन सिंह जी मीरा के इस विचार से सहमत नहीं हुए। ऐसा कहते हैं कि एक बार इनकी माँ कुसुमबाई बीमार पड़ गयीं और ऐसा लगने लगा कि अब ये बचेंगी नहीं। 'मीरा' माँ की बड़ी लाड़ली थी, 'मीरा' बीमार माँ को देखकर दया से लिपट गयीं। कुसुमबाई ने कहा – बेटी ! मैं जा रही हूँ परन्तु मरते समय हमारी एक इच्छा पूरी कर दे। बोलो क्या माँ? बेटी ! कृष्ण से तो मैं भी प्रेम करती थी परन्तु विवाह तो मैंने भी किया था, इसलिए तू विवाह के लिए राजी हो जा, ये मेरी आखिरी इच्छा पूरी कर दे, नहीं तो मैं ऐसे ही तड़प के मर जाऊँगी। बेटी ! ऐसा मौका दुबारा नहीं मिलेगा, चित्तौड़ हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी गद्दी है और फिर कुँवर भोजराज भी तुझे चाहते हैं। मीरा रोने लग गई और बोली – माँ ! तू कुछ भी कह परन्तु मेरा पति तो गिरिधर ही रहेगा, मैं किसी संसारी मनुष्य को पति नहीं बना सकती। कुसुमबाई बोलीं – "मीरा ! तू मन से गिरिधारी को ही अपना पति मानना लेकिन मेरी बात मानकर विवाह कर ले ;अगर तू

विवाह नहीं करेगी तो हमारे ऊपर ये कलंक रहेगा। मीरा ! अभी तू बात मान जा, राजाओं की तो बहुत-सी रानियाँ होती हैं। भोजराज के तो अनेक विवाह हो जायेंगे और मेरा भी कलंक मिट जाएगा और तू भी बाद में अपना नियम पूरा कर लेना। हमें क्यों कष्ट देती है।" मीरा के न चाहने पर भी उन्हें विवाह के लिए 'हाँ' कहना पड़ा।

'राना कै सगाई भई करी विवाह सामा नई गई-
मति बूड़ि वा रँगीले घनश्याम में ॥'

विवाह की सारी तैयारियाँ हो गयीं। जब कोई विवाह करता है तो उसे बहुत-सा सामान इकट्ठा करना ही पड़ता है – गहना, कपड़ा आदि। मीरा के भी विवाह की बहुत बड़ी तैयारी हुई। नई-नई सामग्रियाँ, बड़े कीमती हार लाये गए परन्तु मीरा की स्थिति वही रही **"मति बूड़ि वा रँगीले घनश्याम में। "**उनका मन श्रीकृष्ण में ही रंगा रहा, उनके भीतर किसी प्राकृत पति का भाव उत्पन्न नहीं हुआ। ये प्रियादास जी लिख रहे हैं कोई बनावटी कविता नहीं है। प्रत्येक लड़की का जब विवाह होता है तो वह मन में अनेकों तरह की कल्पनाएँ करती है, अनेक प्रकार के सपने देखती है कि मैं विवाह में कैसे गहने पहनूँगी, कैसी मेंहदी लगाऊँगी, अनेकों सपने देखती है लेकिन यहाँ उल्टा हुआ। ज्यों-ज्यों मीरा के विवाह का समय निकट आता जा रहा है, त्यों-त्यों मीरा के ऊपर और ज्यादा श्याम-रंग चढ़ रहा है। वस्त्राभूषणों की ओर मीरा का मन ही नहीं जा रहा, वे तो गिरिधर के संग नाच रही हैं, गा रही हैं क्योंकि माँ ने कह दिया था कि तू अपना पति गिरिधर को ही मानना।

मीरा इसलिए नहीं गाती-नाचती थीं कि हमारा सम्मान हो। वे एक दर्द को लेकर गाती थीं। उनका प्रचार लक्ष्य नहीं था कि हमारी लोग तारीफ करेंगे, संसार को तो उन्होंने छोड़ ही दिया था।**' कोई मोय निंदौ कोई मोय बिंदौ मैं तो चलूँगी चाल अनूठी। '**निन्दा-स्तुति की परवाह ही नहीं करती थीं, उनके एक-एक शब्द दिव्य हैं, एक उनका पद है –

तेरो कोई नहीं रोकनहार, मगन होय मीरा चली।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिरसैं दूर करी॥
मान अपमान दोऊ धर पटकै, निकसी ग्यान गली।

मुझे संसार में रोकने वाला कोई नहीं है। ये सब शब्द उस शौर्य-वीरता को दिखाते हैं जो आज तक कोई स्त्री नहीं कह पायी। उनके शब्द ही बताते हैं कि वो क्या थीं, उनका चरित्र ऐसा है कि कहते जाओ, मन नहीं भरता है। वही सच्चा साधक है, जो इन सब देह की परिस्थितियों को छोड़कर चलता है। गीता में भगवान् ने कहा है –

'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।'

(गी. १२/१९)

पुनः

'तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।'

(गी. १४/२४)

पुनः

'मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।'

(गी. १४/२५)

लेकिन ये बात जीवन में आती कहाँ है? ऐसा कौन है जो मान-अपमान को छोड़कर चलता हो? ऐसा कौन है जिसे निन्दा-स्तुति की परवाह नहीं हो? हमलोग भाषण भी दे देते हैं लेकिन जब अवसर आता है तो सब द्वन्द्व व्यापते हैं ;द्वन्द्वों का चित्त पर प्रभाव दिखाई पड़ता है परन्तु मीरा के शब्दों को देखो, तब पता पड़ता है कि वे क्या चीज थीं।

भक्ति-मार्ग पर चलने के पहले 'मान-अपमान' दोनों को छोड़ देना चाहिए, तब घर से निकलना चाहिए; परन्तु इस लक्ष्य को लेकर कौन चलता है? हम लोग भी चलते हैं, कोई महन्त बनता है, कोई मण्डलेश्वर, कोई जगतगुरु, ये सब क्या है? ये सब दीवानापन नहीं है, लोलुपता है। भगवान् ने गीता में आज्ञा दी कि घर से जब चलो भजन करने के लिए, मुझे पाने के लिए तो हाथ में असंगता का शस्त्र लेकर चलो लेकिन हम लोग उल्टा करते हैं, आसक्तियों को लेकर चलते हैं; आसक्तियाँ पटक देतीं हैं

गड्ढों में – लाओ पैसा, लाओ भोजन, लाओ भोग। अतः वो दीवानापन नहीं आ पाता जिससे भगवान् वश में होते हैं।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥

(गी. १५/४)

इसलिए भगवान् ने कहा कि पहले समस्त आसक्तियों को छोड़ो फिर घर से निकलो – चाहे तप करने निकले हो, चाहे साधु बनने। तुम आसक्त हो इन्द्रियों में, इन्द्रियों के भोगों में ;तो भजन नहीं कर पाओगे। इसलिए आसक्तियों को पहले असंगता के शस्त्र से काट दो, तब निकलना घर से ; नहीं साधु बनने के बाद भी पैसा इकट्ठा करोगे, वासनाओं को पूरा करने में लग जाओगे और भगवान् का परिमार्गण नहीं हो पायेगा। परिमार्गण करोगे तुम कंचन का, परिमार्गण करोगे कामिनी का, परिमार्गण करोगे भोगों का, उसके लिए तुम्हें अनेक प्रकार के छल-कपट करने पड़ेंगे और इसी में तुम्हारा जीवन चला जाएगा। ये होता भी है हम लोगों के साथ। भगवान् की ओर चलो तो कैसे चलना चाहिए? ये गोपियों ने दिखाया –

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।

(भा. १०/२९/३१)

हे विभो ! हम जानती हैं तुम भगवान् हो परन्तु तुम बड़ी कठोर वाणी बोल रहे हो ;तुमको ऐसा नहीं बोलना चाहिए। तुम आजतक जो बोले हो, प्रेम-शास्त्र के अनुसार नहीं बोले हो। कृष्ण ! तुम कठोर क्यों बोलते हो? हम कौन हैं? ये समझो। अपना परिचय देती हैं –'सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।' हम समस्त विषय-वासनाओं को छोड़कर फिर तुम्हारे पास आयीं हैं। इसलिए तुम हमारा भजन करो, हमें स्वीकार करो।

ये प्रेम का सिद्धान्त है, जो प्रेम करने चला है वह फिर लड्डू-कचौड़ी, पैसा और भोगों का परिमार्गण नहीं करता है ;जो इन चीजों का परिमार्गण करता है, वह प्रेमी नहीं है; उसको तो अपने घर बैठ जाना चाहिए, जिससे वहाँ चाहे लड्डू खाओ, चाहे कचौड़ी खाओ, कुछ भी खाओ; यदि तुम

वास्तव में निकले हो श्रीकृष्ण को पाने के लिए, प्रेम करने निकले हो भगवान् से, तो सच्चाई पूर्वक ये सब लड्डू-पूड़ी, विषय-भोग, पैसा-धेला आदि छोड़ना पड़ेगा। ये प्रेम का पहला सिद्धान्त है, ये लक्ष्य होना चाहिए। ये विषय-भोग कृष्ण-भक्ति में बाधक हैं, इनको छोड़ने के बाद ही कृष्ण-प्रेम मिलेगा।

खान-पान सुख चाहें अपने ।
प्रेम पदारथ छुयें न सपने ॥

(श्रीविहारिन देव जी)

कृष्ण-प्रेम हमको कभी सपने में भी नहीं मिलेगा, चाहे ऊपर से कपड़े बदल लो साधु बन जाओ, चाहे माला करते रहो ;जब तक ऐन्द्रिक-सुख लेने की इच्छा है तब तक प्रेम की गन्ध भी नहीं मिलेगी। शुद्ध प्रेम-तत्व तो तभी मिलेगा, जो गोपी-जनों ने सिद्धान्त बताया कि सभी विषयों को छोड़कर फिर कृष्ण से प्रेम करो क्योंकि विषय-त्याग के बाद फिर प्रेम का प्रारम्भ होता है, जो विषय-त्याग नहीं कर सकता, अपने घर बैठ जाए।

राम प्रेम पथ पेखिऐ दिएँ बिषय तन पीठि ।
तुलसी केंचुरि परिहरें होत साँपहू दीठि ॥

अथवा

"बिना सर्वत्यागं भवति नहि भजनं ह्यसुपते ।"

गोपी-जन सभी विषयों का त्याग करके फिर कृष्ण के पास गयीं और उन्होंने श्रीकृष्ण से डंके की चोट पर कहा – हे विभो ! हम सारे विषयों को छोड़कर तब तुम्हारे पास आयीं, इसलिए तुम भी हमारा भजन करो, अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो क्योंकि तुम्हारी प्रतिज्ञा है –

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।"

(गी. ४/९)

गोपियाँ ये बात अधिकार से कह रहीं हैं, तुम हमारा भजन करो। क्योंकि जिस त्याग में सच्चाई होती है वहाँ अधिकार होता है। ऐसा त्याग मीरा का था, इसलिए नाभाजी ने मीरा को द्वापर की गोपी बताया। उनके शब्द ही ऐसे दिव्य हैं –

'मान-अपमान दोऊ धर पटके, निकसी हूँ ज्ञान गली ॥'

मीरा कहती है – इन दोनों मान-अपमान को पटक दिया; तब चली हूँ। इस प्रेम-गली में तभी निकलना चाहिए ;धोखा-बाजी नहीं करना कि इच्छाओं को लेकर चलें – महन्त पद मिल जाए, मण्डलेश्वर पद मिल जाए, कोठी मिल जाये, सुख-सुविधा, मोटर-गाड़ी मिल जाए, मान-सम्मान मिल जाए। ये जब तक इच्छाएँ रहेंगी, तुम प्रेम-गली में पैर ही नहीं रख सकते। प्रेम-गली में तो वही चल सकता है जिसने मान-सम्मान सबको पटक दिया हो, अब संसार उसको चाहे सम्मान दे, चाहे अपमान करे उसे दोनों से कुछ प्रयोजन नहीं।

हम लोग गीता, भागवत पढ़ते हैं, रटते हैं, भाषण करते हैं परन्तु जन्मभर मान-सम्मान इन्हीं में डूबे रहते हैं, ये नहीं छूटता है। इसीलिये मीरा की तरह दीवानापन नहीं आ पाता। पूर्ण समत्व जब चित्त में आ जाता है, तब ईश्वर का परिमार्गण शुरू होता है। तब दाखिला होता है परमार्थ में। स्वयं कपिल भगवान् ने भी ये बात कही है)श्रीमद्भागवत – ३/२५/१३ में (कि अध्यात्म-योग की शुरुआत तभी होती है, जब सुख-दुःख, मान-अपमान ये सब भिन्नतायें मिट जाती हैं। अगर ये दुःख-सुख, मान-अपमान आदि भिन्नतायें बनी हुयी हैं तो वहाँ जाकर भी कहोगे कि हम इस मंदिर के प्रेसीडेंट हैं, हम इस मन्दिर के मालिक हैं, हम इस आश्रम के महन्त हैं, ये सब वहाँ भी झगड़ा लग जाएगा।

इसलिए मीरा ने मान-अपमान को पटककर कचूमर निकाला क्योंकि ये व्यथा पैदा करते हैं, प्रेम की मस्ती नहीं आने देते। ये सब निन्दा-स्तुति, मान-अपमान बाधायें हैं, ये झकझोर देती हैं आदमी को ;इसलिए प्रेमा-भक्ति पैदा नहीं होती।

अतः माँ की सन्तुष्टि के लिए उन्होंने विवाह के लिए 'हाँ' कर दी लेकिन उन्होंने एक प्रतिशत भी विवाह का बन्धन स्वीकार नहीं किया। जैसे संसार में किसी लड़की का विवाह होता है तो बारात तो पीछे आती है, वह पहले से ही मीठे-मीठे विवाह के सपने देखने लगती है – अब विवाह होगा, वहाँ

जाऊँगी, ऐसा होगा, वैसा होगा। दूल्हा भी यही सोचता है – अब हमारी जीवन-संगिनी आयेगी, ये सब अनेक प्रकार की कल्पनाएँ मन में आने लगती हैं लेकिन यहाँ उल्टा है, इधर तो विवाह की तैयारी है और उधर "गई मति बूड़ि वा रँगीले घनस्याम में।" मीरा की बुद्धि घनश्याम में डूब गयी, उन्हें पता ही नहीं घर में क्या हो रहा है? विवाह का समय सन्निकट आ गया और विवाह होने लगा, भाँवरें लेने का समय आया –

'भाँवरैं परत मन साँवरे सरूप माँझ-
ताँवरैं-सी आवैं चलिवे कौ पति ग्राम में।'

जैसे संसार में किसी लड़की का विवाह होता है, उस समय उसके मुख पर घूँघट रहता है परन्तु उसका मन तो वहीं रहता है कि हमारे दूल्हा राम जी कैसे हैं? दूल्हा भी सोचता है कि हमारी जीवन-संगिनी कैसी हैं? कैसा मुँह होगा, आँख, नाक, गाल कैसे होंगे? क्योंकि घूँघट है देख नहीं सकते। परन्तु यहाँ मीरा की हालत क्या है? इसको देखो – भोजराज के साथ उनकी भाँवर पड़ रही हैं लेकिन मीरा का' मन साँवरे सरूप माँझ' साँवरे स्वरुप में मन है, कृष्ण-रूप में मन है ;उन्हें पता ही नहीं कि मेरा विवाह हो रहा है, क्या हो रहा है? भाँवर लेते समय उन्होंने गिरिधारी लाल को हाथ में ले लिया था और उन्हें ऐसा लग रहा था कि मैं तो अपने गिरिधर के साथ ही भाँवरें ले रही हूँ। लोग समझ रहे थे कि भोजराज के साथ भाँवरें हो रही हैं लेकिन मीरा की धारणा यही रही कि मैं तो गिरिधारी के साथ भाँवरें ले रही हूँ।

'वर तो बरूँ मैं साँवरा, म्हारौ चुड़लौ अमर है जाय॥'

इस तरह उन्होंने माँ की आज्ञा का भी पालन किया और अपनी धारणा की भी रक्षा की। जब विदाई की बात चली, भोजराज के साथ चित्तौड़ जाने की; तो इसको सुनकर मीरा मूर्छित हो गयीं। संसार में किसी लड़की का विवाह होता है वह ऊपर से भले ही रोये परन्तु भीतर से खुश रहती है लेकिन मीरा मूर्छित हो गयीं दुःख के कारण; क्योंकि उन्होंने सोच रक्खा था गिरिधर ही हमारे पति हैं और उनके नियम में बाधा आयी तो वे मूर्छित हो

गयीं। जब किसी तरह से उनको होश में लाया गया तो मीरा को खुश करने के लिए माँ-बाप बोले –

'पूछैं पिता-माता पट आभरन लीजियै जू-
लोचन भरत नीर कहा काम दाम में ॥'

बेटी ! ये सुनहली साड़ी है इसको ले जाओ, ये कीमती गहने हैं इनको ले जाओ ;लेकिन मीरा हीरा-जवाहरात से खुश होने वाली थोड़ी है, जब माता-पिता ने बहुत जिद्द की तो वे बोलीं – आप लोग जबरदस्ती क्यों कर रहे हैं? मैं क्या करूँगी इन आभूषणों को लेकर; मैं क्या करूँगी सुनहली साड़ी लेकर ;माँ ! ये संसार चमड़ी-दमड़ी में मर रहा है, इसको लेकर मैं क्या करूँगी। माँ ! मुझे तो मेरे गिरधर लाल दे दे –

दे री माई अब म्हाँकों गिरिधरलाल ।
प्यारे चरण की आनि करत हों और न दे मणिमाल ॥
नातो साँगो परिवारी सारो मुँने लगै मनौ काल ।
मीरा के प्रभु श्रीगिरिधर नागर छबि लखि भई निहाल ॥

माँ ! जिससे मेरी भाँवर पड़ी हैं, उसको दे दे, बिना पति के मैं कैसे जाऊँगी। मैं श्रीकृष्ण के चरणों की सौगन्ध खाती हूँ, मुझे ये मणि-मालाएँ नहीं चाहिए। जबकि विवाह के समय सभी लड़कियाँ बन-ठन के जाती हैं लेकिन मीरा सामान्य लड़कियों से अलग थी। चित्तौड़ से बारात आयी थी तो उसमें तमाम बड़े-बड़े राजा-रजवाड़े मुकुट बाँधे, तलवार लिए आये थे। लेकिन मीरा कहती है कि माँ ! मुझे ये सब काल की तरह लगते हैं। कैसा दृढ़ वैराग्य था उनका? इसको आहार-शुद्धि कहते हैं। उनकी दृष्टि श्रीकृष्ण के अलावा कहीं नहीं जा रही है, उनकी आँखों में तो केवल गिरिधर की छवि बसी है। मीरा बोली –

'देवौ गिरिधारीलाल जौ निहाल कियौ चाहौ-
और धनमाल सब राखियै उठायकै ।'

माँ ! मुझे इच्छित वस्तु देना चाहती है तो मेरे गिरिधर गोपाल को दे दे ; इसके अतिरिक्त मुझे ये धन-सम्पत्ति कुछ नहीं चाहिए।

'बेटी अति प्यारी प्रीति रंग चढ्यौ भारी-
रोय मिली महतारी कही लीजियै लड़ायकै।'

कुसुमबाई समझ गयीं कि इस पर कृष्ण-रंग चढ़ गया है, ये गिरिधारी को लिए बिना नहीं जायेगी। कुसुमबाई दौड़कर गयीं और गिरिधारी लाल को लेकर आयीं और मीरा से बोलीं – ले बेटी ! अपने गिरिधर को ;इनको खूब प्रेमपूर्वक लाड़ लड़ाना। हमें मालूम है गिरिधर ही तेरा सब-कुछ है, तेरा प्राण भले ही निकल जाए लेकिन तू गिरिधर को नहीं छोड़ेगी। जैसे ही गिरिधारी लाल आये, मीरा ने आँसू बहाते हुए हृदय से लगा लिया और पहले डोला पर गिरिधारी लाल को पधराया फिर स्वयं उस पर चढ़ी। एक-एक शब्द बता रहा है कि मीरा की क्या धारणा थी?

'डोला पधराय दृग-दृग सौं लगाय चलीं-
सुख न समाय चाय प्रानपति पायकै।'

डोला पर ठाकुर जी को पधरा कर, एक मात्र उन्हीं की ओर आखों से आँख मिलाते हुए चलीं। माँ रो रही है कि बेटी ससुराल जा रही है लेकिन मीरा नहीं रो रही क्योंकि उसको तो उसके प्राणपति गिरिधारी मिल गए ; उसे तो सुख की सीमा नहीं है। प्रियादास जी के ये शब्द बता रहे हैं कि मीरा आनन्द में डूबी हुयी है। मीरा माँ-बाप से बिछुड़ने पर क्यों नहीं रो रही? क्योंकि उसने संसार के सम्बन्धों को कभी स्वीकार ही नहीं किया। उसकी माँ तो गिरिधारी हैं, उसके पिता गिरिधारी हैं, उसके पति गिरिधारी हैं अर्थात् मीरा गिरिधारी लाल से ही सब सम्बन्ध मानती थीं। उनका पद इस बात का प्रमाण है –

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥
तात-मात-भ्रात-बन्धु, आपनो न कोई।
छांड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई॥

मीरा ने स्वयं कहा है – न मेरी कोई माँ है, न मेरा कोई पिता है, न कोई मेरा भाई है, न मेरा कोई पति है ;सब संसार काल है। यही शब्द उत्तरा ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहे थे। ये दिव्य सिद्धांत है, इसी से उत्तरा के गर्भ की

रक्षा हुयी थी। श्रीमद्भागवत में प्रथम स्कन्ध में कथा आती है – महाभारत युद्ध के बाद अश्वत्थामा ने ईर्ष्यावश पाण्डवों के वंश का विनाश करना चाहा। उस समय पाण्डवों का आखिरी वंशज अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा के गर्भ में पल रहा था। (वे ही आगे चलकर भागवत के श्रोता महाराज परीक्षित हुए।) तो अश्वत्थामा ने उसको मारने के लिए उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा। ब्रह्मास्त्र से बच पाना एक तरह से असम्भव है क्योंकि एक ब्रह्मास्त्र सारे ब्रह्माण्ड को जला सकता है, इतना शक्तिशाली होता है। सारा आकाश उस ब्रह्मास्त्र की अग्नि से लाल हो गया, वह उत्तरा की ओर चला, उत्तरा का गर्भ उसके ताप से जलने लगा, उसी समय वह कृष्ण की ओर दौड़ी। श्रीकृष्ण उस समय हस्तिनापुर से द्वारिका की ओर जाने के लिए तैयार थे।

जब जीव भगवान् की ओर चलता है, उसी समय से उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। देखो, भगवान् ने स्वयं कहा है –

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः ।
अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्माऽऽत्मदो हरिः ॥

(भा. ११/३/२१, २२)

मनुष्य जब किसी सद्गुरु के पास निष्कपट भाव से जाकर उनसे मेरी शरणागति की शिक्षा लेता है, उसी समय मैं उस पर प्रसन्न हो जाता हूँ। भजन करके भगवान् तो पीछे मिलेंगे; अगर सही ढंग से)निष्कपट भाव से (गुरु में ही शरणागति हो जाए तो भगवान् उतने से ही प्रसन्न हो जाते हैं परन्तु गुरु कैसा हो? जो एकमात्र शुद्ध भगवान् की शरणागति की शिक्षा दे। ऐसा नहीं हो जो भेदबुद्धि सिखाये।

अतः उत्तरा दौड़ी श्रीकृष्ण की ओर ;वहाँ सभी पाण्डव)युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव (खड़े थे, उत्तरा उनकी शरण में नहीं गयी ;सीधे श्रीकृष्ण की शरण में गयी और बोली –

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥

(भा. १/८/९)

हे देवाधिदेव ! रक्षा करो ! रक्षा करो ! आपकी शरण के बिना सब झूठ है, संसारी जीवों का आश्रय झूठा है, मौत के मुँह में जाना है ;चाहे माँ है, बाप है, पति है, पुत्र है – इनका आश्रय लेना काल को पकड़ना है ;काल से छूटने के लिए तो एकमात्र भगवान् की अनन्य शरणागति चाहिए। हम लोग तो संसारी जीवों की शरण में जाते हैं, इसलिए मृत्यु के)काल के(गाल में चले जाते हैं, अगर भगवान् की शरण में चले जाएँ तो काल हमको कभी नहीं खा सकता। यही उत्तरा के साथ हुआ, भगवान् ने उसके गर्भ में प्रवेश किया और उस गर्भगत बच्चे की ब्रह्मास्त्र से रक्षा की।

यही बात मीरा कह रही है कि मेरे तो सब कुछ गिरिधर हैं, संसारी जीवों का आश्रय लेना काल के गाल में जाना है। राणा सांगा के परिवार के सभी सदस्य बड़ी-बड़ी रियासतों के राजा थे, सभी विवाह में आये थे लेकिन मीरा उनको देखकर खुश नहीं हुयी जबकि खुश होना चाहिए था कि हमारे विवाह में इतने बड़े-बड़े लोग आये। खुश क्यों नहीं हुयी? क्योंकि उसका तो वही सिद्धान्त था कि ये सब राजा-रजवाड़े काल के कलेऊ हैं।

चित्तौड़ हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी रियासत थी ;सबसे पहली बहू आने वाली है, इसलिए वहाँ विशेष रूप से महल को सजाया गया। राज-परिवार की जैसी परम्परा होती है। मीरा का डोला राज-भवन में पहुँचा तो उनके स्वागत के लिए राजमाता परिवार की अनेकों रानियों को साथ लेकर गयीं और मीरा को डोला से उतारा गया। राजमाता लिपट गयीं मीरा से क्योंकि सबसे बड़ी बहू है ये चित्तौड़ की महारानी बनेगी। उनके यहाँ कुल परम्परा थी कि वर-वधू सर्वप्रथम देवी-पूजन के लिए मंदिर में जाते हैं क्योंकि पुराने समय में अधिकांश राजा लोग देवी के उपासक होते थे। मीरा की सास यानि 'राजमाता' उनको और भोजराज को गाँठ जोड़कर देवी पूजा के लिए ले गयीं।

'पहुँचीं भवन सासु देवी पै गवन कियौ-
तिया अरु वर गँठजोरौ करयौ भायकै।
देवी के पुजायवे कौं कियौ लै उपाय सासु-
वर पै पुजाइ पुनि बधू पूजि भाखियै ॥'

वहाँ ले जाकर उन्होंने पूजा की तैयारी की और पहले अपने बेटे भोजराज से देवी पूजा करवायी फिर मीरा का नंबर आया तो उन्होंने मीरा से कहा – बेटी मीरा ! ये देवी माँ हैं, इन्हीं की कृपा से हम लोग फल-फूल रहे हैं। इसलिए बेटी ! तू इनको प्रणाम कर और विधिपूर्वक षोडशोपचार से इनकी पूजा कर। मीरा शांत खड़ी रहीं, कुछ नहीं बोलीं, राजमाता ने दुबारा कहा – प्रणाम करो बेटी, फिर भी मीरा ने प्रणाम नहीं किया ;तीसरी बार राजमाता कुछ क्रोध में बोलीं – अरे, प्रणाम क्यों नहीं करती है बेटी, तेरा मस्तक क्यों नहीं झुकता है? तब मीरा ने कहा –

'बोली जू बिकायौ माथौ लाल गिरिधारी हाथ-
और कौ न नवै एक वही अभिलाखियै।'

सासु जी ! ये हमारे साथ में गिरिधारी लाल जी हैं, मैं इन्हीं को प्रणाम करती हूँ। माताजी ! मेरा मस्तक गिरिधारी के अलावा और किसी को नहीं झुकता है। उस समय मीरा ने पद गाया –

न मैं पूजा गौर ज्या जी ना पूजा अनदेव।
म्हें पूजा रणछोड़ जी थे कांई जाणो भेव ॥
कही सास तब मंजुल बानी।
मम कुल रीति बहू नहिं जानी ॥
ये कुल देव सदा के म्हारे।
पूजे रही सुहाग तिहारे ॥
यह सुनि नितै चहुं कित मीरा।
बोली विधवन लखि मद धीरा।
इनके पूजत बढ़ै सुहागा।
यह जो कह्यो मृषा मोहि लागा ॥
ये सब तिय जो तुव घर आई।

पूजे है हैं देवि सदाई ॥
भई कहौ विधवा केहि हेतू ।
मोहि दीखैं द्वै चार निकेतू ॥

माताजी ! हमारा जो मस्तक है ये गिरिधारी लाल के हाथों बिक चुका है ; अब ये दूसरी जगह नहीं झुकेगा। बड़ा विचित्र उत्तर था, आखिर सास भी चित्तौड़ की राजमाता थी और पहली-पहली बार में ही उनसे ऐसा कहना ये दिखाता है कि मीरा कितनी निडर थीं। सास ने उन्हें समझाया बेटी ! देवी माँ की पूजा करने से सुहाग बढ़ता है। उन्होंने मीरा को सुहाग की रक्षा का प्रलोभन दिया क्योंकि संसार की कोई भी लड़की नहीं चाहेगी कि मैं विधवा हो जाऊँ। सास ने कहा "बेटी ! इनकी पूजा से तुम्हारा सुहाग अमर रहेगा। हठ मत कर, अपना सिर माता के चरणों पर रख दे।" लेकिन मीरा के वही शब्द थे "माताजी ! सिर एक बार बिकता है, बार-बार नहीं ;अब ये सिर दूसरी जगह नहीं झुकेगा। "ये है सच्चा समर्पण, केवल भगवान् का ही आश्रय लेना। हमलोग विषयों को समर्पण करते हैं ;केवल भाषण देते हैं कि हमने सबकुछ प्रभु को अर्पण कर दिया लेकिन मन में चोरी रहती है, सेठों के सामने झुकते हैं धन की इच्छा से, कामनियों के सामने झुकते हैं भोग की इच्छा से; तो समर्पण भगवान् को कहाँ हुआ? ये महापुरुषों ने लिखा है –

दर दर डोलत दीन है घर घर जाचन जाय ।
दिये लोभ चश्मा चखनि लघुहु बड़ो जनाय ॥

जगह-जगह झुकने वाला, हाथ फैलाने वाला भिखमंगा होता है, वह उपासक या प्रेमी कभी नहीं होता है। मीरा ने एक जवाब दे दिया – "माताजी ! मेरा निश्चय नहीं बदल सकता।"

'कही बार-बार तुम यही निरधार जानौ-
वही सुकुमार जापै वारि फेरि नाखियै ।'

मीरा ने विवाह से पहले ही निश्चय कर लिया था कि ये शरीर अब गिरिधर को समर्पण कर दिया है ;अब ये भोगों में नहीं जाएगा। इसको कहते हैं 'समर्पण'। हमलोग लड्डू-पेड़ा, पैसा-धेला, मल-मूत्र के दास क्या समर्पण

कर सकते हैं? समर्पण तो वह था जो मीरा ने किया। मीरा ने साफ कह दिया कि मैं किसी भी देव की पूजा नहीं करती और उन्होंने गाया –

पल काटो सही इन नैनन के गिरधारी बिना पल अंत निहारे ।
जीभ कटै न भजै नन्दनन्दन बुद्धि कटै हरिनाम बिसारै ।
मीरा कहै जरि जाउ हियौ पद कंज बिना मन औरहिं धारै ।
सीस नवै ब्रजराज बिना वहि सीसहि काटि कुवाँ किन डारै ॥

माताजी ! जो आँखें गिरिधारी के अलावा कुछ और देखती हैं उन आँखों को फोड़ देना चाहिए ;जो जीभ कृष्ण नाम नहीं लेती है उस जीभ को काट डालना चाहिए ;उस हृदय को जला देना चाहिए, जो श्यामसुन्दर के चरण-कमलों को छोड़कर धन-सम्पत्ति, विषय-भोग, मान-सम्मान धारण करता है। जो सिर श्रीकृष्ण के सामने नहीं झुकता, उनके भक्तों के सामने नहीं झुकता, विषयियों के सामने झुकता है, कामियों के सामने झुकता है या और कहीं झुकता है उस सिर को काटकर कुँआ में फेंक देना चाहिए।

मीरा के इस जवाब को सुनकर राजमाता खीज गई ;उसका सारा शरीर क्रोध से जलने लगा। सारे महल में हाहाकार मच गया क्योंकि राजमाता का क्रोध ;उस समय प्रजातंत्र राज्य नहीं था, चाहे तो अभी फाँसी दिलवा दे लेकिन मीरा एक स्त्री होकर भी 'अतिनिडर 'थीं। उन्होंने कभी किसी का अंकुश माना ही नहीं ;मौत तो उनके सामने नाचती थी, वे मृत्यु को कुछ नहीं समझती थीं।' भक्ति निसान बजायकै' डंके की चोट पर उन्होंने कृष्ण से प्रेम किया, लुक-छिप के नहीं ;क्योंकि उनके अन्दर शुद्ध-भाव था। जो डरता है वो कृष्ण-प्रेमी नहीं हो सकता। महापुरुषों ने कहा है –

घुसमुस-घुसमुस करत हैं कोने में के चोर ।
रूप रसिक हरि दास की चौहट्टे पै ठौर ॥

मीरा जी चौहट्टे पै ठौर वाली थीं। बाकी हम जैसे लोग तो घुसमुस-घुसमुस करने वाले हैं क्योंकि हमारे में शुद्ध-भाव नहीं है; हम जैसे लोग अशुद्ध विचार के होते हैं। मन में अनेकों प्रकार की चोरी रखते हैं। राजमाता क्रोध में जलते हुए अपने पति राणा संग्राम सिंह के पास गईं और उनसे बोलीं –

'तबतौ खिसानी भई अति जरि बरि गई
गई पति पास यह बधू नहीं काम की।
अबहीं जवाब दियौ कियौ अपमान मेरौ
आगे क्यों प्रमान करै? भरै स्वांस चाम की॥'

ये बहू हमारे महल के काम की नहीं है, ये कहाँ से आ गयी? इसने आते ही पहले ही दिन मुझे लौटकर जवाब दिया, मेरा अपमान किया। जब आज इसकी ये हालत है तो पता नहीं आगे चलकर बात मानेगी भी कि नहीं? राणा जी गुस्से में खड़े हो गए और बोले –

'राना सुनि कोप करयौ धरयौ हिये मारिवोई-
दई ठौर न्यारी देखि रीझी मति बाम की।'

इसको तो अभी मार डालना चाहिए, ये तो काली नागिन है। इसने हमारी राजपूतानी शान को कलंक लगा दिया। राणा जी ने मीरा को मारने का निश्चय कर लिया। वे विचार करने लगे कि इसको युक्ति से मारना चाहिए ;क्योंकि उस समय दिल्ली के बादशाह से उनकी लड़ाई चल रही थी, इसलिए आवेश में आकर मीरा को मारने से कहीं राजपूतों में फूट न पड़ जाए, उन्हें ये डर था। परन्तु मीरा को सिर कटने का कोई डर नहीं था, इसलिए उनके लिए 'अतिनिडर 'शब्द का प्रयोग किया नाभाजी ने। नारायण स्वामी जी ने एक पद लिखा है, वह पूरा मीरा पर घटता है –

जाहि लगन लगी घनश्याम की।
धरत कहूँ पग परत हैं कितहूँ भूलि जाय सुधि धाम की॥
जित मुख उठे तितै ही धावै सुरति न छाया धाम की।
छबि निहारि नहिं रहत सार कछु घरि पल निसिदिन जाम की॥
अस्तुति निन्दा करौ भले ही मेंड़ तजी कुल ग्राम की।
नारायण बौरी भई डोलै रही न काहू काम की॥

भक्तों में स्वाभाविक दीवानापन होता है, जैसे कोई शराबी नशे में चलता है, उसे कुछ होश नहीं रहता ;वैसे ही भगवान् का भक्त होता है उसे भी भगवान् के प्रेम में कुछ होश नहीं रहता, इसको कहते हैं 'प्रेम'। मीरा भी जब चलती थीं तो उन्हें होश नहीं रहता था कि मैं कहाँ जा रही हूँ। स्वयं उन्होंने

लिखा है "वन-वन डोलै भटकी" केवल उनकी आँखों में श्याम की छवि रहती थी ;कब दिन हुआ, कब रात हुयी उन्हें कुछ पता नहीं रहता था। न उन्हें ये परवाह थी कि लोग हमारी निन्दा करेंगे ;ये तो हम जैसे भुक्खड़ लोग मान-सम्मान के लोलुप होते हैं। भक्तों की तो वही मस्ती होती है **"तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।"**

राणा जी ने फैसला किया इस बहू को तुरन्त मार डालना चाहिए लेकिन तुरन्त सिर काटना तो ठीक नहीं क्योंकि अपनी वीरता में कलंक लगेगा और राजपूतों में फूट पड़ जायेगी। गृह-युद्ध की स्थिति आ जायेगी। उस समय राणा जी का इब्राहिम लोदी से युद्ध चल रहा था और उन्होंने अपने बेटे भोजराज का विवाह इसीलिये राठौरों के वंश में किया था कि वे हमारे साथ हो जाएँ क्योंकि राठौर बड़े लड़ाकू होते थे। अतः राणा ने विचार किया कि इसको जल्दबाजी में मारना तो ठीक नहीं, युक्ति से मारना चाहिए।" साँप मर जाए, लाठी भी न टूटे।"

चित्तौड़ में एक महल था उसको भूत महल कहते थे ;उसमें जो भी एक रात रुकता था, सुबह उसकी लाश मिलती थी। राणा जी ने विचार किया कि मीरा को उसी भूत महल में भेज देना चाहिए, अपने-आप सबेरे मरी मिलेगी। उस महल में जितने भूत थे वे राणा सांगा के पूर्वज थे। जितने राजा मरते थे, वे सब भूत बनते थे ;क्योंकि राजा लोग भोगी होते थे और भोग की गति यही है – 'नारकीय गति'। भोगी नारकीय-गति से बच नहीं सकता।

स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है –

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

(गी. १६/१६)

"अर्जुन! जो विषय-भोगों में अत्यन्त आसक्त रहते हैं वे घोर नरकों में जाते हैं, उन्हें कोई नहीं बचा सकता।"

हम लोग झूठे ही कोई महात्मा बनता है, कोई साधु बनता है, कोई महन्त बनता है, कोई मण्डलेश्वर बनता है, कोई त्यागी बनता है, कोई

जगद्‌गुरु बनता है, जाने कितने प्रकार की डिग्रियाँ लेते हैं जिनकी कोई गिनती नहीं ;परन्तु डिग्रियाँ लेने से तुम बच नहीं पाओगे, अगर भोगों में आसक्त रहोगे, तो सीधे नारकीय-गति को प्राप्त हो जाओगे।

बलराम जी ने व्यासजी के शिष्य पुराणों के आचार्य श्रीसूतजी का भरी सभा में डंके की चोट पर सिर काट दिया था और कहा था कि मेरा अवतार राक्षसों को मारने के लिए नहीं हुआ है, मेरा अवतार तो धर्मध्वजियों को मारने के लिए हुआ है। ये और बड़े महापापी होते हैं, जो धर्म की आड़ में व्यभिचार करते हैं।

अदान्तस्याविनीतस्य वृथा पण्डितमानिनः ।
न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ॥
एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः ।
वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ॥

(भा. १०/७८/२६, २७)

ये हम लोगों को समझके चलना चाहिए, जिससे भगवान् दया करें हम लोग धर्मध्वजी न बनें। ‘धर्मध्वजी’ माने ध्वजा धर्म की और नीचे पाप करते हैं, उनको ‘धर्मध्वजी’ कहते हैं। जिसने इन्द्रियों का दमन नहीं किया, जिसके अन्दर नम्रता नहीं है, जो मिथ्या अहंकार में डूबा रहता है और अपने को बड़ा ऊँचा पण्डित मानता है, बड़ा-बड़ा भाषण देता है, नट की तरह क्रियाएँ करता है, वह धर्मध्वजी है और बलराम जी के मत से वह वध करने योग्य है।

वेष धरि-धरि हरयौ पर-धन साधु-साधु कहाइ ।
जैसे नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ ॥

अतः जितने राजा होते थे वे बड़े भोगी होते थे, इसी से सबका राज्य चला गया। वे सब मरकर भूत बनते थे। राजा लोग इतना भोग-भोगते थे कि इतिहास पढ़ोगे तो आश्चर्य करोगे। फ्राँस में जो लुई राजा होते थे, उनके लिए हजारों तोतों को पकड़कर उनके जीभ की चटनी बनाई जाती थी। सूडान का एक बादशाह रोज एक मनुष्य का कलेजा खाता था। इतना भोग भोगते थे कि सैकड़ों स्त्रियाँ भी कम पड़ती थीं लेकिन उन्हें पता नहीं कि

भोगों का परिणाम क्या होता है? केवल नारकीय-योनियों की प्राप्ति। निश्चित उसको नरक मिलता है, चाहे राजा हो, चाहे कोई भी हो। मरने के बाद भोगी की जो गति होती है उसको सूरदास जी ने भी एक पद में लिखा है –

बिषया जात हरष्यौ गात ।
ऐसे अंध, जानि निधि लूटत, परतिय सँग लपटात ॥
बरजि रहे सब, कह्यौ न मानत, करि-करि जतन उड़ात ।
परै अचानक त्यौं रस लंपट, तनु तजि जमपुर जात ॥
यह तौ सुनी ब्यास के मुख तैं, परदारा दुखदात ।
रुधिर-मेद, मल-मूत्र, कठिन कुच, उदर गंध गंधात ॥
तन-धन-जोबन ता हित खोवत, नरक की पाछैं बात ।
जो नर भलौ चहत तौ सो तजि, सूर स्याम गुन गात ॥

(सू.वि.प. २८३)

मनुष्य भोग पाकर खुश होता है, कामी व्यक्ति स्त्री को पाकर खुश हो जाता है, लोभी दमड़ी)धन-सम्पत्ति (पाकर खुश हो जाता है। उसको कितना भी समझाओ कि भोग का परिणाम नरक है परन्तु वह नहीं मानता ; जीवन भर विषय-रस में मस्त रहता है लेकिन उसे पता नहीं कि अब मरकर सीधे यमपुर पहुँचना है क्योंकि भोग-भोगने का फल यही है। जिस स्त्री के शरीर को पुरुष भोगता है, ऊपर से भले ही उसकी चमड़ी)आँख, नाक, गाल, त्वचा..आदि (बड़ी सुन्दर दिखे परन्तु उसके शरीर के भीतर तो वही मल-मूत्र, हाड़-मांस भरा है ;परन्तु फिर भी मनुष्य को ज्ञान नहीं होता।

ये इसलिए बताया कि सब राजा लोग राणा के पुरखे थे, भूत बनकर वहाँ भूतमहल में रहते थे। राणा जी ने कहा कि मीरा को ले जाओ, भूत महल में रख दो। लोग गये मीरा से कहा कि आप तो बड़े प्रेम से कीर्तन करती हैं, नाचती-गाती हैं; इसलिए हमने सोचा –‘एकान्त महल में आपके रहने की व्यवस्था अच्छी रहेगी।' मीरा तो चाहती ही थीं अलग एकान्त में रहना ;जहाँ वे अपने गिरिधर को खूब लाड़ लड़ा सकें। उन्होंने कहा – “चलो-चलो।”

उन लोगों ने महल को साफ कर दिया था ताकि मीरा को संशय न हो। मीरा को उस महल में रख दिया गया। मीरा तो वहाँ पहुँचकर बड़ी प्रसन्न हुयीं क्योंकि उनको जितने राजा-रजवाड़े थे, सब काल की तरह लगते थे। मीरा बोलीं कि ये तो गिरिधारी ने बड़ी कृपा कर दी जो एकांत जगह दे दी। "एकान्त वासा झंझट न झाँसा" उस भूत महल में उन्होंने गिरिधारी लाल को सामने पधराया और लाड़-लड़ाने लग गयीं, श्रीकृष्ण-गुण गाने लग गयीं।

'लालनि लड़ावै गुन गायकै मल्हावै-
साधुसंग ही सुहावै जिन्हें लागी चाह स्याम की।'

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति, नैणा बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजन्तीमाल।
क्षुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल॥

जो राजा के सैनिक मीरा को भूत महल में पहुँचाने आये थे, वे बड़े खुश हुए कि अब पता पड़ेगा जब सबेरे इसकी लाश मिलेगी। मीरा वहाँ अपनी मस्ती में गा रहीं हैं, नाच रहीं हैं। उनकी भक्ति के प्रभाव से वहाँ जो आत्माएँ

रह रहीं थीं, उनका भी उद्धार हो गया। सच्चे भक्त के दर्शन से ही महापापियों तक का भी उद्धार हो जाता है। ये बात नारद पुराण में कही गयी है –

महापातक युक्ता वा युक्ता वा चौपपातकैः ।
परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकितः ॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमवापि सत्तम ।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥

(बृहन्नारदीय पू.ख. ७/७४, ७५)

कोई महापापी भी है ;'महापापी' माने ब्राह्मण की हत्या करने वाला, गुरु की हत्या करने वाला, पिता की हत्या करने वाला, माँ की हत्या करने वाला अथवा उससे भी निकृष्ट कोटि के पाप जिसने किए हैं परन्तु जब कोई सच्चा भक्त अगर अपनी दृष्टि से उनको देख ले तो निश्चित इतने से ही उनका कल्याण हो जाता है। भक्त में इतनी बड़ी शक्ति होती है लेकिन हम जैसे मूर्खों को इस पर विश्वास नहीं होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ऐसे ही रामायण में ये बात नहीं लिख दी कि "राम ते अधिक राम कर दासा।" अरे, भगवान् थोड़ी कल्याण करने आयेगा तुम्हारा, भक्त ही कल्याण करेगा। भक्तों के बारे में तो यहाँ तक लिखा है कि जीवित भक्त की तो बात छोड़ो, अगर कोई मरे हुए भक्त का भी शरीर देख ले, उसकी राख या उसकी हड्डियों का स्पर्श कर ले तो इतने से ही वह पाप मुक्त होकर परमगति को प्राप्त कर लेता है परन्तु सच्चे भक्तों का दर्शन मिलना बड़ा दुर्लभ है ; आजकल मिलते हैं तो हम जैसे लड्डू-पेड़ा दास, रुपया-पैसा दास, मल-मूत्र के दास। हम लोग भक्त कैसे हो जायेंगे? अगर कोई सच्चा भक्त है तो उसका दर्शन किसी ने किया तो निश्चित उसके महापाप जल जाएँगे। इसमें कोई संदेह नहीं है, ये हम शास्त्र-प्रमाण से बता रहे हैं।

श्रीमद्भागवत से भी प्रमाण देख लो –

भागवत-माहात्म्य में कथा आती है आत्मदेव पण्डित जी की ;इनका पुत्र था धुंधुकारी, वह बड़ा दुष्ट था, भोगी था; इसलिए मरकर प्रेत बना। गोकर्ण जी जब तीर्थयात्रा से लौटकर घर आये और रात्रि को घर में सोये। अर्ध

रात्रि में अचानक वह प्रेत कभी उनके सामने सर्प बनकर आये, कभी कुछ बनकर आये तो वे समझ गये कि ये कोई दुरात्मा है। उन्होंने मन्त्र पढ़कर जल से छींटा लगाया तो वह आत्मा बोलने लगी। उस प्रेत ने कहा – भैया ! मैं तुम्हारा भाई धुंधुकारी हूँ। मैंने जीवन भर भोग भोगे, इसीलिये मैं प्रेत-योनि में पड़ा हूँ। भैया ! आप हमारा उद्धार करो। ये होती है भक्त की शक्ति, पहले वह बोल नहीं सकता था लेकिन उनके दर्शनमात्र से ही वह बोलने लग गया, ये सब कथाएँ सत्य हैं। इससे पता पड़ता है कि भक्त-दर्शन से निश्चित पाप नाश होता है।

देखो, भगवद्-भक्त के सामने कोई आसुरी शक्ति टिक नहीं सकती है। श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में नारद जी ने भक्ति महारानी से कहा है –

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥

(भा.माहा. २/१७)

हे देवी ! जिसके हृदय में भगवान् की भक्ति है – प्रेत, पिशाच, राक्षस, ब्रह्मराक्षस आदि उसको छू भी नहीं सकते हैं, उसके सामने टिक नहीं सकते हैं, यहाँ तक कि लाखों-लाखों वर्ष तक तपस्या करने वाले रावण, हिरण्यकशिपु जैसे असुर भी शरणागत भक्त के आगे टिक नहीं सकते, भक्त में वह शक्ति है। इसका प्रमाण देखो – लंका में विभीषण भजन करते रहे परन्तु रावण उनका कुछ नहीं कर पाया, उन्हें रोक नहीं पाया। जिस समय रावण ने अपमान करके विभीषण को लंका से निकाला, उसी समय सारे लंकावासी आयुहीन हो गए थे, उनकी श्री चली गयी थी।

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा ।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४२)

लंका में इतने अत्याचार होते रहे फिर भी लंका भगवान् के कोप से बची रही, इसका कारण था वहाँ भक्त विभीषण जी का निवास। एक भक्त भी जिस स्थान में रहता है, उस स्थान का योग-क्षेम भगवान् धारण करते हैं।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं ।
आयूहीन भए सब तबहीं ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४२)

जब विभीषण लंका छोड़कर चले तो उसी समय सारे लंकावासी आयुहीन हो गए थे अर्थात् मर गए थे। उनकी आयु उसी समय समाप्त हो गई, उसका परिणाम पीछे दिखाई पड़ा जब सारी लंका नष्ट हो गयी। 'भक्ति' वह शक्ति है, जिसकी हम जैसे लोग कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

दूसरा उदाहरण देखो – हिरण्यकशिपु ने लाखों वर्ष तक तप किया, तप की शक्ति से उसके आगे ब्रह्मा, शिवादि भी नहीं खड़े हो सकते थे। ये भागवत में स्वयं हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से कहा है –

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ।
तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किम्बलोऽत्यगाः ॥

(भा. ७/८/७)

"प्रह्लाद! मैं जब क्रोध करता हूँ तो तीनों लोक, उनके ईश्वर सहित काँपते हैं।"वह ऐसा शक्तिशाली हिरण्यकशिपु भी भक्त प्रह्लाद की निर्भयता को देखकर आश्चर्य में हो गया कि एक बच्चा मेरे सामने निर्भय खड़ा है और मेरे शासन को भी नहीं मानता तो उसने प्रह्लाद से पूछा –

प्रह्लाद सुप्रभावोऽसि किमेतत्ते विचेष्टितम् ।
एतन्मन्त्रादिजनितमुताहो सहजं तव ॥

(विष्णु. पु. १/१९/२)

"प्रह्लाद! तेरे पास किसका बल है? किसके बल पर तू मेरे सामने निर्भय खड़ा है? क्या तूने कोई तपस्या की या कोई मन्त्र जपा या फिर कोई यज्ञ किया? आखिर तुझमें इतनी शक्ति कहाँ से आयी? "

प्रह्लाद जी ने कहा –

न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम ।
प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि ॥

(विष्णु. पु. १/१९/४)

"पिताजी ! न मैंने कोई मन्त्र जपा है, न कोई तप किया है, न मेरे में कोई स्वाभाविक शक्ति है।" फिर तेरे अन्दर ये प्रभाव कैसे आया? "पिताजी ! साधारण-सी बात है, जिसके हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण आ गए अर्थात् उनकी भक्ति आ गयी, उसके प्रभाव की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है।" अब जैसे हम लोग बक-बक करते हैं, हमारे हृदय में लड्डू-पेड़ा, पैसा-धेला, राग-द्वेष है तो हृदय में भगवान् कहाँ से आयेंगे? अपने हृदय को देखना चाहिए कि हमारे अन्दर भोग की चाह तो नहीं है, मान-प्रतिष्ठा की चाह तो नहीं है, धन-सम्पत्ति की चाह तो नहीं है ;अगर ये सब इच्छाएँ बनी हुयी हैं तो लाख जन्म तक तुम साधन करते रहो, कभी भगवान् हृदय में नहीं आयेंगे, ये अकाट्य सिद्धांत है, इसको कोई नहीं काट सकता। कोई जप-तप, योग-यज्ञ, नियम-व्रत करने की जरूरत नहीं है, केवल हृदय में कृष्ण को लाओ, तुम्हारे अन्दर समस्त शक्तियाँ अपने-आप आ जायेंगीं। मीरा ने कोई तपस्या नहीं की, न कोई मन्त्र जपा; केवल उनके हृदय में कृष्ण थे, इसलिए सारी राज्य-शक्ति उनके सामने असफल हो गयी, सारी राज्य-सत्ता मिलकर उनका एक बाल भी टेढ़ा नहीं कर पायी। ये हृदय में कृष्ण को लाने का प्रभाव है परन्तु हम जैसे लोग आत्म-निरीक्षण नहीं कर पाते, जीवन भर अंधे बने रहते हैं। सूरदास जी ने लिखा है –

इत-उत देखत जनम गयौ ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ ॥

मनुष्य अपना सारा जीवन इधर-उधर झाँकने में ही बिता देता है। ये स्त्री बड़ी सुन्दर है, इसकी आँख-नाक बड़ी सुन्दर है; ये सेठ जी बड़े धनवान हैं, कुछ दे जायेंगे ;बस इसी को देखने में जीवन नष्ट कर देता है। यहाँ तक कि लोग घर छोड़कर निकलते हैं भजन करने, साधु बनने लेकिन ये झाँका-झूँकी की आदत नहीं छोड़ पाते। चलते हैं घर से भगवान् का परिमार्गण करने लेकिन बीच में ही भटक जाते हैं, माया में फँस जाते हैं।

चलना-चलना सब कहैं, बिरला पहुँचे कोय।
इक कंचन इक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥

धन-सम्पत्ति और सुन्दरी ये दो दुर्गम घाटी हैं। भोग मनुष्य को गिरा देता है, इसलिए कामिनी से दूर रहना चाहिए। दूसरा पैसे का जब बण्डल हाथ में आता है तो मनुष्य उसको छोड़ना नहीं चाहता ;इसलिए भगवान् ने भागवत में उद्धव जी से कहा है –

'तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥'

(भा. ११/२३/१९)

जो वास्तव में अपना कल्याण चाहता है, उसे पैसा दूर से ही छोड़ देना चाहिए – न पैसे को छुओ, न उसकी ओर देखो और न पैसे की चर्चा सुनो; परन्तु मनुष्य छोड़ नहीं पाता, उसे पैसा बड़ा प्रिय लगता है, स्त्री बड़ी प्रिय लगती है, भले ही चाहे नरक में ही क्यों न जाना पड़े।

गीता में भी भगवान् ने कहा कि मुझे पाने के लिए चलते तो लाखों लोग हैं परन्तु बीच में ही भटक जाते हैं –

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गी. ७/३)

ऐसे भटक जाते हैं कि फिर जीवन में कभी उत्थान नहीं हो पाता है। इसलिए प्रह्लाद जी ने कहा कि अगर हृदय में अच्युत की जगह टका-पैसा आ गया या कामिनी आ गयी तो फिर तुम्हारे भाग्य में भटकना ही लिखा है। आँख खोलकर देखो, ये सारा संसार भटकने में ही लगा है। कोई-कोई भक्त होता है जो इन सबको छोड़ देता है और भवसागर से तर जाता है, बाकी हम जैसे तो भटकते ही रहते हैं।

अस्तु मीरा को भूत-महल में भेज दिया गया, मारने की इच्छा से। ऐसा केवल मीरा के साथ ही नहीं हुआ अपितु सभी भक्तों के जीवन में ऐसी विषम-परिस्थितियाँ आती हैं परन्तु भक्तों के ऊपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उन परिस्थितियों का सामना करने से उनका यश और बढ़ जाता है, प्रभु के प्रति उनकी निष्ठा और सुदृढ़ हो जाती है।

महाराष्ट्र में एक भक्त हुए हैं नामदेव जी। भक्तमालजी में इनका चरित्र आता है। एक विशेष बात और है कि भक्त लोग तो बाद में जन्म लेते हैं, उनके ईर्ष्यालु पहले ही पैदा हो जाते हैं। राम पीछे आते हैं, रावण पहले आ जाता है। कृष्ण पीछे आते हैं, कंस पहले आ जाता है। संत पीछे आते हैं, उनके निंदक, ईर्ष्यालु पहले ही आ जाते हैं। नामदेव जी कीर्तन करते थे, कुछ लोग उनसे चिढ़ते थे। एक बार एकादशी का दिन था, रात्रि-जागरण में कीर्तन चल रहा था, कीर्तन करने वाले लोगों को प्यास लगी तो जो लोग नामदेव जी से चिढ़ते थे, उन्होंने कहा कि नामदेव जी ! आप जंगल से पानी ले आइये। जंगल में एक वृक्ष पर भयंकर ब्रह्मराक्षस रहता था, उन लोगों ने नामदेव जी को मरवाने की इच्छा से वहाँ भेज दिया क्योंकि ये अनादिकाल से नियम चला आ रहा है कि 'आसुरी-शक्ति' दैवीय-शक्ति से चिढ़ती है। भक्त लोग तो बड़े भोले और निर्भय होते हैं। नामदेव जी चले गये वहाँ, रात्रि का समय था अपने प्रभु पाण्डुरंग जी का कीर्तन करते हुए चले जा रहे थे –

'जय जय पांडुरंग पांडुरंग पांडुरंग हरि ।'

जब उस वृक्ष के नीचे से निकले तो वह ब्रह्मराक्षस विकराल रूप धारण करके उनके सामने आ गया। उसका रूप ही इतना भयानक था कि साधारण आदमी तो उसको देखकर ही मर जाता परन्तु भक्त लोग डरते नहीं हैं, हम जैसे मूर्ख लोग डरा करते हैं। नामदेव जी सभी प्राणियों में भगवान् को देखते थे, सबको भगवान् समझते थे। 'भय' भेद-दृष्टि में होता है। उन्होंने उस ब्रह्मराक्षस को भी भगवान् समझा और करताल लेकर के गाने लगे।

ये आये मेरे लम्बक नाथ ।
धरती पांव स्वर्ग लौं माथो योजन भरि भरि हाथ ॥
सिव सनकादिक पार न पावैं तैसेइ सखा विराजत साथ ।
नामदेव प्रभु अन्तर्यामी कीन्यो मोहिं सनाथ ॥

अब इनका नाम क्या रक्खें? क्योंकि अगर हाथ में वंशी होती तो गोपालजी कह देते, अगर हाथ में धनुष होता तो रामजी कह देते परन्तु इनका तो आकाश तक लम्बा शरीर है, अतः नामदेव जी ने उनका नाम

'लम्बकनाथ 'रख दिया; और बोले – प्रभो ! आपकी महिमा कोई जान ही नहीं सकता है। सनकादि, शिवादि भी नहीं जान सकते हैं। हे प्रभु ! आपने दर्शन दिया, आपका दर्शन पाकर हम धन्य हो गए। कैसा उनका दृढ़ भाव था? उसी समय उस ब्रह्मराक्षस में से भगवान् प्रकट हो गए और नामदेवजी से बोले – नामा ! ये तो ब्रह्मराक्षस था। वे बोले – प्रभो ! हमें तो पता नहीं, हम तो यही जानते हैं कि सब आप ही हैं।

इसलिए भक्त डरता नहीं, उसकी आस्था दृढ़ रहती है। यही घटना मीरा के साथ घटी, उनको मारने के लिए भूत महल में भेज दिया गया लेकिन वे डरी नहीं। वहाँ जाकर उन्होंने ठाकुर जी को पधराया, पैरों में घुँघरु बाँधे, हाथों में उठाई करताल और नाचने-गाने लग गयीं –

मैं तो म्हारा रमैया ने देखबो करूँ री।
तेरो ही उमरण तेरो ही सुमिरण, तेरो ही ध्यान धरूँ री॥
जहाँ-जहाँ पाँव धरूँ धरती पर, तहाँ-तहाँ निरत करूँ री।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरणा लिपट परूँ री॥

मीरा सदा नाचती रहती थीं क्योंकि उनकी आदत थी; आदत क्या, उनका तो ऐसा प्रेम था कि उस प्रेम की हम लोग तो ढोंग में भी ऐक्टिंग नहीं कर सकते। जिसके हृदय में प्रेम होता है, वही नाच सकता है। पद्मपुराण में लिखा है –

पद्भ्यां भूमेर्दिशोदृग्भ्यां दोर्भ्यां चामङ्गलं दिवः।
बहुधोत्सार्यते राजन् कृष्ण भक्तस्य नृत्यतः॥

"भक्त जब भगवान् के प्रेम में नाचते हुए धरती पर पैर रखता है तो उसके पैरों की ठोकर से पृथ्वी के पाप जल जाते हैं, आँखों से वह जब

देखता है तो समस्त दिशाओं के पाप जल जाते हैं, नाचते हुए दोनों हाथ उठाता है तो आकाश में हो रहे सभी पाप जल जाते हैं।”

नृत्य करना, कीर्तन करना – ये रसोपासना है। ललित कलाओं में संगीत प्रमुख है, संगीत एक ऐसी उभयवाहिनी नदी है, जिसका एक सीधा प्रवाह है और एक उल्टा प्रवाह। उल्टा प्रवाह तो दुनिया में बह रहा है, वहाँ लोग गाना, बजाना, नाचना – ये सब विषय-सुख के लिए करते हैं। सीधा प्रवाह भक्त लोग करते हैं – भगवान् को रिझाने के लिए गाते हैं, भगवान् को प्रसन्न करने के लिए नाचते हैं। अगर ललित कला का प्रयोग भक्ति में किया जाए तो वो रस-रूपा भक्ति बन जाती है। संगीत की परिभाषा है –

'गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते ॥'

गाना, बजाना और नाचना – ये तीनों अंग एक साथ हों, तब जाकर संगीत बनता है। मीरा जी गिरिधारी के सामने स्वयं बाद्य बजाकर गाती थीं, नाचती थीं। वे एक बहुत बड़ी गायिका भी थीं, उन्होंने बहुत से राग भी बनाये हैं। उन्हीं के नाम पर एक ‘मीरा मल्हार ’राग है, जिसका गान करने से रसानुभूति होती है।

मीरा जब महल में नाच रहीं थीं, कृष्ण-गुण गा रहीं थीं तो उनकी भक्ति के प्रभाव से जो महल में आत्माएँ थीं, उनके पाप नष्ट हुए और वे स्पष्ट बोले –

मीरा तेरी जय हो ! मीरा बेटी की जय हो !!

सब जय-जयकार करने लग गए। मीरा रुक गयीं कि ये आवाज कहाँ से आ रही है? यहाँ तो मेरे अलावा कोई नहीं था। मीरा को ये नहीं बताया गया था कि इस महल में भूत-प्रेत रहते हैं।

मीरा ने कहा – “आप लोग कौन हैं? ” वे बोले कि बेटी मीरा! हम तेरे सामने नहीं आ सकते, हम इस राजवंश के भूत-पूर्व राजा हैं, हमने केवल भोग-परायण जीवन जिया था, इसलिए कई वर्षों से हम इस प्रेत-योनि को भोग रहे थे। बेटी मीरा! तुमको यहाँ मारने के लिए भेजा गया था। जो भी इस महल में आता था, हम लोग उसको मारकर अपने जैसा प्रेत बना लेते

थे। पर बेटी ! तुम्हारी भक्ति के प्रभाव से हमारा कल्याण हो गया अन्यथा हम लोग जाने कितने वर्षों तक इस प्रेत-योनि में पड़े रहते। मीरा को प्रणाम करके सभी चले गये।

जब सबेरा हुआ तो राज-परिवार के लोगों ने सोचा कि अब तक तो मीरा मर गयी होगी ;परन्तु राज-कर्मचारी जब वहाँ पहुँचे तो देखते हैं – मीरा तो पद गाते हुए नाच रही है।" मैं तो कृष्ण कन्हैया गाया करूँ। "एक बार तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह सच में मीरा नाच रही है या कहीं उसकी आत्मा तो नहीं नाच रही। उनकी हिम्मत नहीं हुयी पास में जाने की, कुछ समय तक दूर से देखते रहे फिर समझ गए कि यह तो मीरा ही नाच रही है, मीरा मरी नहीं है। लोगों ने सूचना दी राणा जी को कि मीरा नहीं मरी। तो उन्होंने कहा कि ठीक है, उसको वहीं रहने दो, आज नहीं तो कल मर जायेगी।

वहाँ एकान्त में रहने से मीरा को एक फायदा हुआ, वे कृष्ण-गुणगान गाती थीं और उनके गाने से रस की अनुभूति होती थी, उसको सुनने के लिए संतों-भक्तों का जमावड़ा आना शुरू हो गया। अगर राजमहल में रहतीं तो वहाँ संत लोग नहीं आ पाते क्योंकि वहाँ पहरा रहता है। धीरे-धीरे उनकी भक्ति की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी। वहाँ दूर-दूर से संत आने लग गए। राजमहल में जब पता चला तो मीराबाई जी की ननद ऊदाबाई उनके पास आयी और मीरा से बोली –

'आयकै ननन्द कहै गहै किन चेत भाभी!
साधुनि सौं हेत में कलंक लागै भारियै।
राना देशपति लाजै बाप कुल रीति जात-
मानि लीजै बात वेगि संग निरवारियै॥'

भाभी सा ! आप होश में क्यों नहीं आती हो? तुम्हारे इस एकान्त महल में साधु-पुरुषों के आने से हमारे राज्य पर कलंक लग रहा है। राणा जी सारे चित्तौड़ के मालिक हैं, उनके ऊपर कलंक लग रहा है और तुम्हारे पिता राणा रतन सिंह भी राठौर वंश के प्रतापी राजा हैं, इससे तुम्हारे पितृवंश की भी बदनामी होती है। भाभी सा ! तुम साधुओं का संग करना बन्द कर दो।

साधुओं के साथ नाचना-गाना बन्द कर दो। समाज यह नहीं जानता कि ये भक्ति हो रही है, लोग यह विश्वास ही नहीं कर सकते कि कोई 'स्त्री' पुरुषों में बैठकर भक्ति भी कर सकती है। मैं आपसे प्रार्थना करने आयी हूँ। आपके इस कार्य से आपका पीहर और ससुराल कलंकित हो रहा है।

ऊदाबाई की बात सुनकर मीरा बोलीं –

'लागे प्रान साथ सन्त पावत अनन्त सुख-
जाको दुख होय ताको नीके करि टारियै।'

ऊदा! मेरे प्राण तो सदा साधुओं के साथ ही रहते हैं। संत अगर यहाँ से चले गए, तो मेरा प्राण भी चला जायेगा। एक ऐसा उत्तर दिया इससे ज्यादा कठोर और कोई उत्तर नहीं हो सकता है; और भी कहा मीरा ने कि संतों के साथ मुझे अनन्त सुख मिलता है। अनन्त सुख से मतलब कि संसारी लोगों को तो विषय सुख मिलता है। विषय में तो कोई सुख है ही नहीं, वे तो दुःखरूप हैं। अनन्त सुख तो संतों-भक्तों का संग करने से मिलता है क्योंकि उनका संग करने से नित्य भगवान् की लीला-कथाएँ सुनने को मिलती हैं, भगवच्चर्चा होती है। ऊदा! सत्संग मेरा प्राण है, मैं 'सत्संग' के बिना जीवित नहीं रह सकती। इसी को मीरा ने पद में गाकर के कहा है –

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ।
सुनो री सखी तुम चेतन होइ कै, मन की बात कहूँ॥
साधु – संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ।
तन-धन मेरो सबहि जावो, भली मेरो सीस लहूँ॥
मन मेरो लागो सुमिरन सेती, सबका मैं बोल सहूँ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनाशी, सतगुरु सरण गहूँ॥

ऊदा! मैं हृदय की बात कहती हूँ, साधु-संगति मेरे जीवन का लक्ष्य बन चुका है। ये तो मैंने अपनी माँ (कुसुमबाई) की इच्छा पूरी करने के लिए विवाह किया; लेकिन मेरी माँ ने कहा था कि बेटी! भोग में नहीं पड़ना। इसलिए मेरा लक्ष्य तो यही साधु-संगति है। विवाह हुआ मेरा लेकिन मेरा भोग लक्ष्य नहीं है। मेरा लक्ष्य तो है" जग सूँ दूर रहूँ "विषयी-जगत से बहुत

दूर रहूँ। तुम कहती हो लज्जा चली गयी, बदनामी हो रही है, तो सुनो" तन-धन मेरो सबहि जावो, भलो मेरो सीस लहूँ । "बदनामी तो बहुत छोटी चीज है, मेरा सिर भले ही कट जाए पर मैं साधु-संग नहीं छोड़ सकती हूँ; क्योंकि सन्त लोग कृष्ण-गुण गाते हैं, कीर्तन करते हैं, इसलिए मैं साधु संग करती हूँ। इसके लिए हमें सिर कटाना मंजूर है पर साधु संग नहीं छूटेगा। इसके लिए कोई मेरी निन्दा करे, गाली दे, मुझे कड़वे वचन बोले, मैं सब सहन कर लूँगी।

भक्ति जब आ जाती है तो सहिष्णुता (सहनशीलता) आदि गुण अपने-आप आ जाते हैं। चैतन्य महाप्रभु जी ने कहा है कि कृष्ण-गुण तो तुम तब गा पाओगे, जब तुम्हारे अन्दर ये तीन बातें होंगी –

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥

(शिक्षाष्टक – ३)

१ .तृणादपि-सुनीचेन – तिनका से भी छोटे बनो अर्थात् दैन्य होना चाहिए, अगर अकड़ में रहोगे तो भक्ति नहीं होगी।

२ .तरोरपि-सहिष्णुना – वृक्ष से भी ज्यादा सहिष्णु (सहनशील) बनो ; क्योंकि मनुष्य जब भक्ति करने चलता है तो उसे बहुत कड़वे वचन सहने पड़ते हैं, अगर सहनशीलता नहीं होगी तो भक्ति नहीं कर पाओगे।

३ .अमानिना-मानदेन – स्वयं अमानी बनो अर्थात् मान-सम्मान नहीं चाहो और दूसरों को सम्मान दो। अगर मान-सम्मान चाहोगे तो उसी में उलझे रहोगे, कैसे सम्मान मिले? कैसे प्रतिष्ठा बढ़े? उसके लिए दम्भ करोगे भक्ति नहीं होगी। महात्माओं ने कहा है कि प्रतिष्ठा चाहना, शूकर की विष्ठा खाना है। इसलिए ये तीन बातें जब आ जायेंगी, तब तुम कृष्ण-गुण गा पाओगे, सुन पाओगे।

मीरा ने जब ऊदाबाई को कठोर उत्तर दिया तो वह लौटकर अपने पिता राणा के पास चली गयी। राणा जी ने पूछा – "ऊदा ! तू अपनी भाभी-सा

को कुछ समझाकर आयी है कि नहीं।" वह बोली कि समझाया तो पिताजी ! पर उसने हमें लौटकर जबाब दे दिया।

भाभी-सा ने कहा –

'लागे प्रान साथ सन्त पावत अनन्त सुख-
जाको दुख होय ताको नीके करि टारियै।'

'संत मेरे प्राण हैं, मैं इनको छोड़ नहीं सकती।' इस बात को सुनकर राणाजी की भृकुटी तन गयी "अरे, ये साधु-संत, ये भिखमंगे उसके प्राण बन गए, हम राजवंश के लोग उसके लिए कुछ नहीं; और क्या कहा है उसने? " पिताजी ! भाभी सा ने कहा है कि जिसको साधुओं से या मुझसे कष्ट है तो वे मुझसे दूर ही रहें। बस सुनते ही राणा जी क्रोधित हो गए और बोले – "अब मीरा इस महल में नहीं रह पायेगी, मैं उसे सदा के लिए इस संसार से विदा कर दूँगा।"

राणा जी का एक गुप्त सलाहकार था, जिसका नाम था 'बीजा'। वह राणा जी का बड़ा विश्वासपात्र था। राणा जी ने एकान्त में उसको बुलावाया। वह आया और बोला – "राणा जी ! आपने कैसे याद किया? "

राणा जी – बीजा ! इस महल में एक काली नागिन आ गयी है उसको मारना है।

बीजा – राणा जी ! ये तो बड़ा सरल काम है, किसी सपेरे को बुलवा लीजिये, वह पकड़ कर मार देगा।

राणा जी – वह काली नागिन बिल में छिपने वाली नहीं है, वह सबकी छाती पर नाच रही है। वह हमारे बड़े लड़के भोजराज की बहू मीरा है।

बीजा – राणा जी ! क्या हुआ? आपने तो बड़े धूमधाम से विवाह किया था फिर इतनी जल्दी क्यों मारना चाहते हो।

राणा जी – हाँ बीजा ! हम जल्दी उसे मारना चाहते हैं। किस तरह से मारा जाए तुम ये बताओ, इसीलिए तुमको बुलवाया गया।

बीजा – राणा जी ! क्षमा करें, मुझे आप यह बतावें, उसका अपराध क्या है? उसके हिसाब से हम दण्ड की सोचेंगे।

(राणा जी समझ गए कि ये घबड़ा रहा है क्योंकि मीरा राठौरों की बेटी है।)

राणा जी – वह भिखमंगों में, साधुओं में नाचा करती है, इससे हमारी इज्जत जाती है और हमने जब ऊदा से संदेशा भिजवाया तो उसने हमारी बात नहीं मानी, लौटकर जवाब दे दिया। मुझे जवाब देने की आजतक किसी की हिम्मत नहीं हुयी। उसने कहा कि ये भिखमंगे साधु हमारे प्राण हैं, मैं मर जाऊँगी पर इनका संग नहीं छोडूँगी। इसलिए उसको मारना जरूरी है।

बीजा – राणा जी ! मीरा को इस ढंग से मारना चाहिए, जिससे राजपूतों में फूट भी न पड़े और मीरा भी मर जाए। अगर राठौर बिगड़ गए तो हमारी शक्ति नष्ट हो जायेगी और अभी आपको दिल्ली से भी लड़ना है।

राणा जी – बीजा ! फिर क्या उपाय है, कैसे इसको मारा जाय?

बीजा (सोच-विचार करके) – राणाजी ! चित्तौड़ का सबसे प्रसिद्ध एक पण्डा है, दयाराम उसका नाम है। उस दयाराम पण्डा को फाँसा जाए।

राणाजी – बीजा ! उससे क्या होगा?

बीजा – महाराज ! उसके हाथों से विष का कटोरा भेजा जाय ;मीरा गिरिधर की बड़ी भक्त है, वह गिरिधर के नाम पर मरने को तैयार रहती है, गिरिधर का चरणामृत समझकर वह उस जहर के प्याले को अवश्य पी जायेगी।

राणाजी – बीजा ! तुमने तो कमाल कर दिया, इससे किसी को हमारे ऊपर शक भी नहीं होगा।

दयाराम पण्डा जी को बुलाया गया। पण्डा-पुजारियों को सभी जानते ही हैं कि मंदिर में बस पैसा चढ़ाओ और चाहे कैसा भी उनसे काम करवा लो। आज भी कई मन्दिरों में फोटो नहीं खींचने देते लेकिन अगर कोई कुछ पैसा दे दे तो सब फोटो लेने देंगे। राणा जी ने उन्हें लोभ दिया, सब प्रकार से उन्हें प्रसन्न कर दिया। दयाराम पण्डाजी ऐसा नीच काम करने में पहले हिचकिचाए क्योंकि उन्होंने सुन रखा था कि मीरा बड़ी भक्ता है लेकिन एक तो चित्तौड़ के महाराज राणाजी का दबाव और दूसरा जब सामने मुहरों की थैली देखी तो राजी हो गए।

'सुनिकै कटोरा भरि गरल पठाय दियौ-
लियौ करि पान रंग चढ्यौ यों निहारियै ॥'

राणाजी ने राज-वैद्य से बड़ा तीव्र हलाहल विष तैयार करवाया। ऐसा विष कि होठों से स्पर्श होते ही आदमी मर जाए। दयाराम पण्डाजी तिलक लगाकर, श्रृंगार करके विष का प्याला लेकर मीरा के महल की ओर चले। उनके हाथ काँप रहे हैं, परन्तु क्या करें, अगर ऐसा कार्य नहीं करते हैं तो राणाजी नहीं छोड़ेंगे। वे मीरा के महल में पहुँचे। उस समय मीरा अपने गिरिधर की सेवा कर रही थीं, उन्होंने उठकर पण्डा जी को प्रणाम किया।

पण्डाजी – महारानीजी ! हम आपके लिए ठाकुरजी का चरणामृत लाये हैं ;मीरा ने चरणामृत का नाम सुनते ही उस प्याले को अपने हाथों में ले लिया।

यद्यपि मीरा को पता था कि इसमें जहर मिला हुआ है। कैसे पता पड़ा? मीरा की कुछ दासियाँ थीं, जो भक्त थीं ;उन्होंने मीरा को बता दिया था। इस घटना को स्वयं उन्होंने अपने एक पद में गाया है –

मैं अपनो मन हरि सूं जोर्‌यो, हरी सूं जोर सकल सूं तोर्‌यो ।
मेरी प्रीत निरन्तर हरि सूं, ज्यूं खेलत बाजीगर गोर्‌यो ।
जब मैं चली साध के दरसन, तब राणो मारण दोर्‌यो ।
जहर देन की बात बिचारी, निर्मल जल में लै विष घोर्‌यो ।
जब चरणोदक सुण्यो सरवणा, राम भरोसे मुख में ढोर्‌यो ।

मेरा अपराध कुछ नहीं, न मैंने कोई दुराचार किया ;फिर भी मुझे मारने का प्रयास किया जा रहा है। मेरा अपराध इतना ही था कि मैंने कृष्ण से प्रेम किया है, मैं साधुओं का संग करती हूँ लेकिन मुझे मरने की परवाह नहीं है। मैंने तो अपने मन को गिरिधारी में लगा दिया है। मैं तो अपने गिरिधर की जमूड़ी हूँ, वे बाजीगर हैं, मुझे जैसे राखें मैं उसी में प्रसन्न रहती हूँ, वे मौत देंगे मैं उसे भी सहर्ष स्वीकार कर लूँगी। मुझे पता है राणा जी ने मुझे मारने के लिए यह विष का प्याला भेजा है लेकिन 'जब चरणोदक सुण्यो सरवणा राम भरोसे मुख में ढोरयो। 'मैं अपने गिरिधर के भरोसे इसको पी जाती हूँ। चाहे मैं मर जाऊँ या बच जाऊँ परन्तु मैं अपने साधु-संग के व्रत को नहीं तोड़ सकती। मीरा गिरिधारी का स्मरण करते हुए उस विष के प्याले को पी गयीं।

ऐसा तीक्ष्ण विष था, एक बूँद में ही आदमी मर जाए, लेकिन मीरा सारा प्याला पी गयी और उसे कुछ नहीं हुआ।

उस समय पण्डा जी की क्या दशा हुयी होगी, कायदे से तो वहीं धरती फट जाती और शर्म के मारे मर जाते लेकिन मनुष्य को पाप तुरन्त फल नहीं देता है, अगर तुरन्त फल मिल जाए तो संसार में पाप होना ही बंद हो जाए। समय लगता है लेकिन पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी है, राणाजी ने मीरा को विष दिया था, कुछ समय बाद उस पाप का फल उन्हें भोगना पड़ा।

राणाजी युद्ध में पराजित होकर जब लौट रहे थे तो उनके सामन्तों ने उनको

रास्ते में ही विष दे दिया था। पाप का फल एक दिन अवश्य भोगना पड़ता है।

इधर मीरा के जहर पीने के बाद तो और उल्टी हालत हो गयी ;अभी तक तो मीरा कुछ राजवंश की लाज-शर्म करती थी लेकिन जहर पीने के बाद मीरा ने लाज-शर्म को तिनका की तरह तोड़ दिया, बिल्कुल घूँघट खोल दिया।

जैसे शूरवीर के लिए जैसे-जैसे भय की घड़ी आती है, वैसे-वैसे उनका साहस, उत्साह और बढ़ता है। उसी प्रकार मीरा घूँघट खोलकर गिरिधर के प्रेम में उन्मत्त होकर नाचने लगीं ;और गाती जा रही हैं –

नाचन लगी तब घूंघट कैसो लोक लाज तिणका ज्यूं तोर्‌यो ।
नेकी बदी हूं सिर पर धारी मन हस्ती अंकुश दै मोर्‌यो ।

जिसको जीने-मरने की परवाह नहीं उसको क्या भय हो सकता है। जो जीने-मरने की परवाह करता है वह प्रेमी नहीं है और न ही भक्त है।

एक रानी रत्नावती नाम की भक्ता हुयीं हैं, उनको मारने के लिए सिंह भेजा गया था लेकिन वे इतनी निडर थीं कि सिंह को देखते ही बोलीं – आओ प्रह्लाद के नरसिंह भगवान् ;ऐसा कहते हुए जाकर सिंह से लिपट गयीं। इसी तरह की अनेकों स्त्रियों की कथाएँ हैं ;ये सब कोई साधारण स्त्रियाँ नहीं थीं, सैकड़ों शूरवीर भी इनके चरणों की रज नहीं पा सकते हैं।

इतना तीक्ष्ण जहर पीने के बाद भी मीरा मरी नहीं; इतने बड़े चमत्कार को देखने के बाद भी लोगों ने उनकी बुराई करना नहीं छोड़ा। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि तुलसीदास जी ने लिखा है –

फूलह फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरुख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ॥

(रा.च.मा.लंका १६)

मूर्खों को कभी भी ज्ञान नहीं हो सकता, चाहे उन्हें ब्रह्मा जैसे गुरु ही क्यों न मिल जाएँ? वे तो निन्दा ही करेंगे ;लेकिन अच्छे लोग भी होते हैं संसार में, भगवद्भक्त भी होते हैं। मीरा की सखियाँ थीं वे कहने लगीं – वाह मीरा ! तुझे कुछ नहीं हुआ, देखलो ये है भक्ति का चमत्कार। आगे मीरा कहती हैं – "मन हस्ती अंकुश दै मोरयो।" ये मन एक मतवाला हाथी है, इसको मैंने अंकुश मारा – चल, घबड़ा मत खुलकर नाच, भय का काम नहीं है।

'प्रगट निसान बजाय चली मैं राणा राव सकल जग जोर्‌यो ।'

निसान कहते हैं 'लड़ाई के पहले जो डंका बजता है उसको 'पुराने जमाने में लड़ाई वीरता की थी, उस समय बन्दूक-गोली की नहीं थी। युद्ध से पहले डंका बजता था, जिसकी आवाज सुनकर योद्धा जोश में भर जाते थे। वही बात मीरा कह रही हैं कि अब तो मैं निसान बजाकर नाचूँगी।

इधर पण्डा जी भागते हुए राणा जी के पास पहुँचे।

राणाजी – पण्डा जी ! क्या हुआ? मीरा मरी कि नहीं।

पण्डा जी (घबड़ाते हुए) – महाराज ! मीरा नहीं मरी है।

राणा जी – क्या, कुछ भी असर नहीं हुआ।

पण्डा जी – महाराज ! आप असर की बात करते हैं, वह तो घूँघट खोलकर और आवेश में नाचने लग गयी।

राणा जी (क्रोध में) – जाओ, सामन्तों को बुलाओ; कोई दूसरा उपाय किया जाएगा।

जब मीरा को पता पड़ा कि मुझे मारने के लिए दुबारा सामन्तों की मीटिंग बुलाई गयी तो वे बोलीं –

'मीरा सबल धणी के सरणे कहा भयो भूपति मुख मोर्‌यौ ।'

'डरता वह है, जो भगवान् की शरण में नहीं है; जिसने दृढ़ता से भगवान् की शरण ग्रहण कर ली है, राजे-रजवाड़े तो छोड़ो, उसका तो स्वयं काल भी कुछ नहीं कर सकता है।' सूरदास जी ने कहा है –

'जो घट अन्तर हरि सुमिरै ।
ताकौ काल रूठि कहा करिहै, जो चित चरन धरै ॥'

भय तो हम जैसे लोगों को लगता है क्योंकि हम लोग शरीर की शरण में हैं ;इन्द्रियों की शरण में हैं; भोगों की शरण में हैं; रुपया-पैसा, लड्डू-पेड़ा आदि की शरण में हैं; परन्तु जो भगवान् की शरण में है उसको किसी का डर नहीं है। मीरा बोली –'कहा भयो भूपति मुख मोर्‌यो। 'अगर ये राजा-रजवाड़े मुँह मोड़ भी लेंगे तो क्या कर लेंगे? जब मीरा नाचकर गिरिधर लाल के पास आयीं तो देखा ठाकुर जी के मुख से झाग निकल रहा है। उसी समय मीरा ने पद गाया –

राणाजी जहर दियौ हम जाणी ।
जैसे कंचन दहत अगिनि में निकसत बारा वाँणी ।
लोक लाज कुल कानि जगत की दई बहाय जस पाँणी ।
अपने घर का परदा करले मैं अबला बौराँणी ।
तरकस तीर लग्यौ मेरे हियड़े गरक गयौ सनकाँणी ।
सब सन्तन पर तन मन वारूँ चरण कमल लपटाँणी ॥
मीरा के प्रभु राखि लई है दासी आपणी जाँणी ॥

राणा जी ! मुझे पता था कि तुमने मुझे जहर दिया ;लेकिन उस जहर के पीने से मेरे अंगों की कान्ति और बढ़ गयी। अब तो मैंने लोक-लज्जा को पानी की तरह बहा दिया है। राजवंश की मान-मर्यादा का ख्याल तुम रक्खो ;मैं अब रानी नहीं रही ;मैं एक पागल हूँ और पागल कोई मर्यादा नहीं मानता है। राणा जी ! तुमने जो विष दिया उससे मुझे कोई दुःख नहीं लेकिन दुःख इस बात का है कि इससे मेरे साँवरे को कष्ट हुआ ;मेरा कष्ट साँवरा झेल गया ;मेरी चोट मेरे साँवरे ने अपने ऊपर ले ली ;इस दुःख के

कारण मेरा हृदय फट रहा है। मैं संतों की दासी हूँ, इसलिए गिरिधर ने मेरी रक्षा की।

मीरा की साधु-संग में बड़ी निष्ठा थी। उन्होंने स्वयं कहा कि मैंने विष पिया मेरी रक्षा क्यों हुयी? क्योंकि मेरी संतों में प्रीति थी' सब सन्तन पर तन मन बारूँ चरण कमल लपटाँणी। 'उन्होंने अपना चमत्कार नहीं माना बल्कि कहा कि मैं संतों के चरणों में लिपटती थी, इसीलिए प्रभु ने मेरी रक्षा की। ये सब पंक्तियाँ बताती हैं कि उनकी सन्तों में कितनी निष्ठा थी। सच्चा भक्त तो वही है जो भक्तों से प्रेम करता है।

श्रीमद्भागवत में भगवान् ने उद्धवजी से कहा है – '**मद्भक्तपूजाभ्यधिका** ' (भा .११/१९/२१) उद्धव ! मेरे भक्त की पूजा मुझसे ज्यादा करनी चाहिए।

यही बात प्रह्लादजी ने भी कही है –

यदि दो चीजें हैं तो कठिनाइयाँ क्या, काल भी आ जाये तो कुछ नहीं कर पायेगा। प्रह्लाद जी पर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ आयीं – उनको अग्नि में जलाया गया, समुद्र में डुबोया गया, जहर दिया गया, सर्पों से डँसवाया गया, उनके ऊपर अस्त्र-शस्त्र चलाए गए, बड़े-बड़े दिग्गज हाथियों से कुचलवाया गया; लेकिन फिर भी उनका बाल बांका नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? क्योंकि उनमें दो बातें थीं।

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चिगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥

(भा. ७/९/१८)

एक तो 'गुणविप्रमुक्त' राग-द्वेष रहित होकर भजन किया जाय; परन्तु ये हम लोगों में नहीं है। रामदास श्यामदास से द्वेष करता है, श्यामदास रामदास से; ये सब जो राग-द्वेष का नाटक है, ये हमारे समाज में सबसे ज्यादा भरा हुआ है ;इसीलिये चमत्कार नहीं होता, हम लोग कमजोर हो गए हैं।

दूसरी बात है – शुद्ध भक्तों का संग मिल जाय। ये दो बातें हैं तो दुनिया की कोई भी विपत्ति हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती, संसार का कोई भी कष्ट हमको नहीं सताएगा।

परन्तु हम लोगों में राग-द्वेष भरा पड़ा है, जहाँ देखो यही मिलता है। इसीलिए आज सारा समाज तेजहीन हो गया है। इससे भजन, जप, तप सब तामस हो जाता है। भजन गुण-धर्मों से छूटकर यानि राग-द्वेष छोड़कर करना चाहिए। हम लोग भजन करते हैं, कीर्तन करते हैं परन्तु राग-द्वेष बना रहता है, इसलिए कोई चमत्कार नहीं होता है।

प्रियादास जी कहते हैं – जहर पीना अच्छा है क्योंकि जहर तो एक बार ही मारता है लेकिन 'साधु-संग का त्याग कर देना' ये ऐसा विष है जो कि अनन्त जन्मों तक मार डालेगा। बिना भक्त-संग के भक्ति नहीं आती है। बड़ी अच्छी बात प्रियादास जी लिख रहे हैं – विष पीना अच्छा है पर साधु-संग त्याग रूपी जहर को पीना अच्छा नहीं है।

'गरल पठायौ सो तौ सीस लै चढ़ायौ-
संग त्याग विष भारी ताकी झार न सँभारी है।'

मीरा ने कहा कि मैं विष पी सकती हूँ परन्तु साधु-संग त्याग रूपी विष नहीं पी सकती ;क्योंकि जहर तो एक बार ही मारता है परन्तु भक्त-संग त्याग कर देना यह ऐसा विष है जो अनन्त जन्मों तक मार डालेगा। इसको जिसने पी लिया यानि भक्तों का संग छोड़ दिया तो अनन्तकाल के लिए उसकी मौत हो गयी फिर उसका कभी कल्याण नहीं होना है। इसलिए भक्तों का संग छोड़ने से मर जाना अच्छा है।

जब जहर से मीरा नहीं मरी तो राणाजी ने सामन्तों की मीटिंग बुलाई और उसमें फैसला लिया कि अब एक ही उपाय है इसका सिर काट दिया जाए। जब आदमी द्वेष में अंधा हो जाता है तो फिर वह उचित, अनुचित कुछ नहीं सोचता है। अब प्रश्न हुआ कि बिना अपराध यदि सिर काटेंगे तो ये अच्छा नहीं होगा ;मीरा के पीहर वालों को क्या जवाब देंगे। तब मीटिंग में किसी ने प्रस्ताव रखा कि मीरा के पास साधु बहुत आते हैं ;जब कोई साधु

उससे मिलने आए उसी समय मीरा का सिर काट दिया जाए और कह देंगे कि व्यभिचार में पकड़ी गयी, एक साधु के साथ आलिंगन कर रही थी।

राणा जी बोले – वाह ! यह उपाय अच्छा है।

'राना नै लगायौ चर बैठे साधु ढिंग ढर-
तबही खबर कर मारौ यहै धारी है॥'

राणा ने उसी समय मीरा के महल के पास अपने गुप्तचरों को लगा दिया और उनसे कहा कि जब मीरा के पास कोई साधु आये तुरन्त हमें सूचना दो, उसी समय हम मीरा का सिर काट देंगे। गुप्तचर मीरा के महल के पास में जाकर छिपकर बैठ गए। राणा ने उनसे बोल रखा था कि जब इसके पास में रात में कोई साधु बैठा हो, उसी समय हमको खबर कर देना।

मीरा जी को इस बारे में कुछ पता नहीं परन्तु भगवान् जिसको बचाना चाहते हैं, उसको कोई नहीं मार सकता है। होनहार की बात उस दिन मीरा के यहाँ कोई साधु नहीं आया। रात को मीरा किवाड़ बन्द करके ठाकुरजी के सामने नाचती थीं। नित्य श्रीकृष्ण साक्षात् मीरा के पास आते और उनके साथ हँसते-खेलते-नाचते थे। हम लोगों को विश्वास नहीं होगा, आज कलियुग में भी भगवान् भक्तों के साथ साक्षात् रूप से लीलाएँ करते हैं।

'राजैं गिरिधारीलाल तिनहीं सौं रंग जाल-
बोलत हँसत ख्याल कान परी प्यारी है।'

प्रतिदिन की भाँति गोपालजी आये और मीरा के साथ पासा खेलने लगे।

मीरा ने शर्त रखी कि –

चौपर खेलूँ पीउ संग, बाजी राखूँ जीव।
हारूँ तो मैं पीउ की, जीतूँ तो मम पीव॥

यदि मैं हार जाऊँगी तो मैं तुम्हारी हो जाऊँगी और यदि जीत जाऊँगी तो तुम हमारे हो जाओगे। पासा फेंका गया, हार-जीत किसकी हुयी? ये तो पता नहीं लेकिन ठाकुर जी जान-बूझकर जोर से हँसे क्योंकि उनको लीला करनी थी। दूर तक आवाज गयी। गुप्तचरों ने सुना, वे बोले – ओहो ! जरूर कोई भीतर है, चलो राणाजी को खबर करते हैं।

'जायकै सुनाई भई अति चपलाई आयौ-
लिये तरवार दै किवार खोली न्यारी है॥'

गुप्तचर गए दौड़कर राणाजी को बताने ;राणाजी को भी बेचैनी के कारण रात में नींद नहीं आ रही थी। इसलिए वे तलवार लेकर घूम रहे थे कि कब मीरा का सिर काटें। उन गुप्तचरों को देखते ही राणाजी खुश हो गए। गुप्तचर बोले – 'महाराज ! मीरा के महल में कोई पुरुष है।' राणाजी ने उनको तुरन्त मोतियों का हार दिया। राजा लोग खुश हो जाते हैं तो इनाम देते हैं। राणा जी नंगी तलवार लेकर चले कि पहले तो मीरा का सिर काटूँगा और फिर उसके बाद, जो साधु होगा उसका सिर काट दूँगा और कह दूँगा – "दोनों व्यभिचार में पकड़े गए। अतः राजा होने के नाते उन्हें दण्ड दिया गया।" जब वे वहाँ पहुँचे तो मीरा के महल के दरवाजे बन्द थे। भगवान् की लीला, राणाजी को भी ठाकुरजी के हँसने की आवाज सुनाई दी।

'बोलत हँसत ख्याल कान परी प्यारी है।'

राणा जी बोले – "ओहो ! ये तो सच में बड़ी बदमाश है। किवाड़ बंद है और अन्दर किसी पुरुष के हँसने की आवाज आ रही है।" राणा जी ने बाहर खड़े होकर आवाज दी – "मीरा ! किबाड़ खोल? " मीरा ने दरवाजा खोला।

'जाके संग रंग भींजि करत प्रसंग नाना-
कहाँ वह नर गयौ वेगि दै बताइयै।'

उन्होंने अन्दर जाकर देखा तो वहाँ मीरा अकेली है, वह पुरुष गायब है क्योंकि गोपालजी तो राणा के आते ही मूर्ति में प्रवेश कर गए थे। राणाजी ने मीरा से पूछा – "बता तेरे साथ कौन हँस रहा था। जल्दी बता वह कहाँ चला गया? " मीरा ठाकुर जी की मूर्ति की ओर इशारा करके बोलीं –

'आगे ही विराजै कछू तोसौं नहीं लाजै-
अभूँ देखि सुख साजै आँखैं खोलि दरसाइयै ॥'

"ये तुम्हारे आगे ही तो विराजमान हैं हमारे गिरिधारी लाल। आँखें खोलकर देखलो राणा जी ! " राणा को क्या दिखाई पड़ेगा? मीरा को तो साक्षात् दिखाई पड़ रहा है कि श्री कृष्ण खड़े हैं, मुस्कुरा रहे हैं परन्तु राणा जी को नहीं दिखाई पड़ रहा है क्योंकि हमारी आँखों में माया का पर्दा पड़ा है, इसलिए भगवान् नहीं दिखाई पड़ते हैं। जब राणाजी को कुछ नहीं दिखा तो खिसिया गए।

'भयोई खिसानौ राना लिख्यौ चित्र भीत मानौ-
उलटि पयानौ कियौ नेकु मन आइयै ।
देख्यौ हूँ प्रभाव ऐपै भाव में न भिद्यौ जाइ-
बिना हरिकृपा कहो कैसे करि पाइयै ॥'

थोड़ा-सा जरूर मन में आया कि हो सकता है मीरा सच बोल रही हो, हो सकता है कृष्ण आये हों। थोड़ा-सा क्यों आया? महापुरुष या भक्त अमोघ शक्तिशाली होते हैं। इसलिए मीरा के संग के प्रभाव से थोड़ी-सी उनके मन में ये बात आई किन्तु फिर वही अविद्या से बुद्धि ग्रसित हो गयी। बिना शरणागति के वास्तविक दर्शन नहीं होता है, उसके लिए सच्ची श्रद्धा)सात्विक श्रद्धा(चाहिए और सच्ची श्रद्धा भावोत्पत्ति के बिना उत्पन्न नहीं हो सकती और बिना भक्त और भगवान् की कृपा के भाव नहीं पैदा हो सकता है। सामने श्रीकृष्ण आ जाएँ तो भी भाव पैदा नहीं होगा। भावुक भक्तों के पास बैठोगे तो अपने-आप भाव पैदा हो जाएगा। भावहीन का संग करोगे तो चाहे वह कितना बड़ा विद्वान् है, पंडित है लेकिन भाव पैदा नहीं होगा।

'भगवान् का' भक्तों के लिए भक्तानुग्रह रूप होता है, वह भक्तों को दिखाई पड़ता है। जैसे – आचार्यों के जो ठाकुर थे, वे उन्हें साक्षात् दिखाई पड़ते थे। सनातन गोस्वामी जी को मदनमोहन जी के साक्षात् दर्शन होते थे ;स्वामी हरिदास जी को बिहारी जी साक्षात् दिखाई पड़ते थे ;महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को श्रीनाथ जी साक्षात् दिखाई पड़ते थे ;मीराबाई को साक्षात् गिरिधारी लाल दिखाई पड़ते थे परन्तु हम लोगों को मूर्ति रूप दीखते हैं।

अवतार काल में भी भगवान् के वास्तविक रूप का दर्शन सबको नहीं होता था। बिना भाव के कभी भी दर्शन नहीं होगा, चाहे भगवान् सामने आ जायें तब भी तुम उन्हें मनुष्य ही समझोगे। ये हमेशा के लिए समझ लेना चाहिए, भगवान् सामने आएगा तो भी तुम नहीं पहचान पाओगे। तुमको मनुष्य ही दिखाई पड़ेगा। ये सनातन नियम है – जिसकी जैसी भावना-दृष्टि है वैसे ही भगवान् दिखाई पड़ते हैं –

जिन्ह कें रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

(रा.च.मा.बाल. २४१)

मीरा को साक्षात् गिरिधर दिखाई पड़ रहे हैं और पास में राणाजी को कुछ नहीं दिख रहा है क्योंकि जिसकी जैसी दृष्टि है उसको वैसे ही भगवान् दिखाई पड़ते हैं। यह एक सिद्धान्त है, जो सदा भगवद्-विग्रह के साथ लगा रहता है। तुम्हारे सामने भगवान् भी आ जाएगा तो तुम उसको देख नहीं पाओगे, देखने के लिए भाव के नेत्र चाहिए। ये बात भागवत में ब्रह्माजी ने कही है कि जब तक भाव-योग से परिभावित हृदय नहीं होगा, तुम भगवान् के वास्तविक दर्शन नहीं कर पाओगे।

'यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥'

(भा. ३/९/११)

राणाजी का हृदय भावहीन था और मीरा का हृदय भाव से परिभावित था, इसलिए उसको भगवान् का वास्तविक रूप दिखाई पड़ता था।

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति, नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजन्तीमाल ॥
क्षुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल ॥

'आगे ही विराजै कछू तोसौं नहीं लाजै-
अभूँ देखि सुख साजै आँखैं खोलि दरसाइयै ।'

यह मीरा कह रही हैं कि राणा जी! हमारे गिरिधर का रूप कितना सुन्दर है। देखो, दर्शन करो उनका। लेकिन वहाँ कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है। कैसा श्रृंगार है गोपाल जी का। अधरों पर मुरली धारण किये हैं, गले में वैजन्तीमाला है। कमर पर करधनी की छोटी-छोटी घंटियाँ सुशोभित हो रही हैं। चरणों में रसमयी ध्वनि करने वाले नूपुर पहने हुए हैं। अरे राणा जी! देखो न कितना सुन्दर दर्शन है। अरे, ध्यान से देखो कैसे सुन्दर हैं हमारे गिरिधर गोपाल। कितना सुन्दर रूप सुहावना, कैसे विशाल सुन्दर नेत्र हैं, हमारे साँवरे का क्या मुख चन्द्र है? मीरा ने राणा के सामने श्रीकृष्ण के रूप का भी वर्णन किया लेकिन राणा खिसिया के चले गए।

मीराबाई गिरिधर गोपाल को ही अपना पति मानती थीं उन्होंने कहा था कि संसारी कोई मल-मूत्र का पिण्ड पुरुष मेरा पति नहीं हो सकता है। यह संसारी सुहाग सब झूठा है। ये बात केवल मीरा ने ही नहीं कही श्रीमद्भागवत में स्वयं लक्ष्मी जी इस बात को कह रही हैं –

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥

(भा. ५/१८/२०)

संसारी कोई मनुष्य पति कैसे हो सकता है? 'पति' माने होता है जो चारों ओर से रक्षा करे। अब जो स्वयं काल के मुख में पड़ा है, मर रहा है, वह पति कैसे हो सकता है? पति तो वह है जिसको किसी का भय नहीं है –

न काल का, न गुणों का। जिसको किसी का भय नहीं, जो सब तरह से रक्षा करे वह पति एक ही है श्रीकृष्ण और वह इतना दयालु पति है कि वह चाहता है जीव हमको वरण कर ले तो अनन्त भय से छूट जाए। इसीलिये भगवान् अवतार लेते हैं, लीलाएँ करते हैं। लेकिन हम जैसे लोग व्यभिचारी हैं, संसार में ही फँसना चाहते हैं, संसार से ही प्रेम करते हैं। रुक्मिणी जी ने भी यही कहा था। जब श्रीकृष्ण ने उनसे परिहास में कहा था कि रुक्मिणी तुमने मेरा क्यों वरण किया। अरे, हम तो भगोड़े हैं, शिशुपाल आदि बड़े-बड़े राजा थे उनका वरण कर लेती तो रुक्मिणी ने भगवान् को जवाब दिया –

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः
स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्
युष्मत्कथा मृडविरिंचसभासु गीता ॥

त्वक्स्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्त-
माँसास्थिरक्तकृमिविड्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा
या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रति स्त्री ॥

(भा. १०/६०/४४, ४५)

हे अच्युत! जिन संसार के पतियों की आप चर्चा कर रहे हैं, वे पाँच प्रकार के होते हैं –

(१ (खर)गधा(– संसार के अधिकांश पति गधाराम होते हैं, जिन्हें केवल भोग से मतलब है, स्त्री डाँटती-फटकारती है, तिरस्कार करती है फिर भी उससे भोग की भीख माँगते हैं, जैसे गधा किसी गधी के पीछे दौड़ता है भोग की इच्छा है, गधी दुलत्ती मारती है, उसको सह लेता है लेकिन भोगेच्छा नहीं छोड़ता, ऐसे ही गधे-श्रेणी के पतियों को स्त्री की उपयोगिता केवल भोग के लिए ही दिखाई पड़ती है।

(२(गो)बैल, बिजार(– दूसरे श्रेणी के पति बिजार होते हैं। बिजार बहुनायक होता है कई गायों के साथ रमण करता है लेकिन फिर भी भोगों से तृप्त नहीं होता।

(३ (श्व)कुत्ता(– जैसे कुत्ते में डण्डा मारो, उसका तिरस्कार करो, अपमान करो उसे कोई असर नहीं पड़ता। ऐसे जो कुत्ते-श्रेणी के पति होते हैं वे पिट लेंगे, बदनामी सह लेंगे लेकिन भोग नहीं छोड़ सकते।

(४(बिडाल)बिल्ला(– ये हिंसक होते हैं, कहो तो स्त्री को ही मार डालें।

(५ (भृत्य) दास(– स्वयं स्त्री की सब सेवा करते हैं – कपड़े धोएँगे, खाना बना के खिलाएँगे....आदि। वे स्त्री के गुलाम होते हैं।

ये रुक्मिणी जी ने बहुत सही बात कही है कि जिस स्त्री के कान में हे कृष्ण! आपकी कथा नहीं गयी है, वही इनको अपना पति बनायेगी। भगवद्-भक्ता स्त्री देहरति में कभी नहीं फँसती है। जो कामिनी स्त्रियाँ होती हैं, वे ही देहरति चाहती हैं।

यह शरीर एक मल-मूत्र से भरा मटका है। इसके भीतर-बाहर सब जगह केवल गन्दगी ही गन्दगी भरी है। ऊपर से पाँच चीजों से ढका हुआ है – चमड़ी (खाल), दाढ़ी-मूछ, रोएँ, नख (नाखून) और केश। इसके भीतर क्या भरा है? रक्त, माँस, हड्डी, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त, वात – ये सब गंदगियाँ भरी हुयी हैं। ऐसे गन्दे शरीर को जो स्त्री अपना पति मानती है, इससे लिपटती-चिपटती है, वह स्त्री मूढ़ है। इसलिए मीरा ने किसी संसारी पुरुष को अपना पति नहीं माना, केवल गिरिधर को ही अपना पति मानती थीं। उन्होंने स्वयं राणाजी से कहा था –

राणा जी मैं तो साँवरे रंग राँती ।
झूठा सुहाग जगत का री सजनी होय होय मिट जासी ॥
मैं तो एक अविनाशी वरूँगी जाहे काल नाय खासी ।
और तो प्याला पी-पी माती मैं बिन पिये ही म्याँती ॥
ये प्याला है प्रेम हरि का छकी रहूँ दिन राँती ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर खोल मिली हरि छाती ॥

राणा जी! ये संसार के सारे सुहाग झूठे हैं ;इन मुर्दों से क्या प्रेम करना, इनको क्या पति बनाना। ये सब काल के कलेऊ हैं। मेरा तो पति गिरिधर है, जो अविनाशी है ; काल स्वयं जिसके आगे हाथ जोड़े खड़ा रहता है। मैं तो हर समय उसी के प्रेम में छकी रहती हूँ। इस तरह उस दिन के बाद राणा ने हिम्मत नहीं की मीरा के महल में दुबारा जाने की।

मीराबाई अपने महल का दरवाजा बन्द करके दिन-रात गिरिधर के सामने नाचती रहती थीं। श्रीभगवान् के सामने नृत्य करना एक बहुत बड़ी साधना है।

स्वयं चैतन्य महाप्रभु जी कहा करते थे –

यो हि नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहु सुभक्तितः ।
स निर्दहति पापानि कल्पान्तर शतेष्वपि ॥

(स्कन्द.पु. ७.४/२३/७४)

भगवान् के सामने नृत्य करने में सैकड़ों कल्प के पाप जल जाते हैं। 'कल्प' कहते हैं ब्रह्मा जी के एक दिन को यानि हमारी गणना के अनुसार चार अरब उन्तीस करोड़ अस्सी लाख चालीस हजार वर्ष का एक कल्प होता है। भगवान् के सामने नृत्य करने से ऐसे सैकड़ों कल्पों के पाप जल जाते हैं। श्रीमद्भागवत में भी नृत्य की बहुत महिमा गाई गयी है –

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥

(भा. ११/२/४०)

जो भगवान् के समक्ष अनुराग पूर्वक गाता है, संसार की परवाह छोड़कर पागलों की तरह नाचता है, क्योंकि संसार के लोगों की तो आदत है बुराई करने की। मीराबाई की इतनी बुराई क्यों हुई? क्योंकि वे लोक-लाज छोड़कर गिरिधर गोपाल के सामने खुलेआम पागलों की तरह नाचती थीं। अस्तु जो इस आराधना को करता है, वह निश्चित भगवान् को जीत लेता है। भागवत में कई जगह यह बात कही गयी है –

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

(भा. ११/१४/२४)

जब कोई निष्किञ्चन भक्त भगवान् के सामने नाचता है तो वह संसार को पवित्र करता है "मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति" उसके नृत्य से तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं।

मीरा विधवा कैसे हुयीं, यह एक विवादित विषय है। इस विषय में दो मत हैं। पहला मत तो यह है कि एक बार मीरा का नृत्य देखने की भोजराज की इच्छा हुयी। मीरा गाती-नाचती थीं तो वे मीरा के महल के दरवाजे के पास खड़े होकर सुनते थे, आखिर एक दिन उन्होंने मीरा से कहा कि तुम अपना नृत्य हमें भी दिखाओ। मीरा जी बोलीं कि हमारा नृत्य बहुत मँहगा पड़ेगा। उन्होंने समझा कि मँहगा का मतलब कुछ सम्पत्ति हीरा-मोती चाहती होगी तो भोजराज बोले कि तुम जो भी माँगोगी मैं देने को तैयार हूँ। भोजराज ने तीन बार कहा – हाँ दूँगा, हाँ दूँगा, हाँ दूँगा। मीरा ने कहा – अच्छा ! तुम अगर अपने वचन के सच्चे हो तो आज हम तुमसे माँगते हैं कि तुम मीरा के इस शरीर को न कभी देखना, न स्पर्श करना, इसको श्रीकृष्ण को अर्पण कर दो, गिरिधर को सौंप दो तथा लोक-सुख के लिए दूसरा विवाह कर लो। इतना सुनते ही भोजराज मूर्छित हो गए। उसी समय उनकी ननद ऊदा वहाँ आ गयी, उसने देखा कि भाई मूर्छित पड़े हैं तो

उसने शोर मचा दिया कि ये भाभी सा ! राक्षसी है, इसने मेरे भाई को मार डाला। बहुत से अपशब्द उसने मीरा से कहे। भोजराज की जब मूर्छा दूर हुयी तो उन्होंने परिवार वालों से कहा कि मीरा को कभी कष्ट मत देना, इसका गिरिधर लाल में सच्चा प्रेम है। इसके बाद भोजराज ने आँख बंद कर लीं और शरीर छोड़ दिया।) इस मत को सुदामाकुटी, वृन्दावन से छपे भक्तमाल में छापा गया है। (दूसरा मत यह भी है कि कुछ लोग भोजराज की मृत्यु के विषय में कहते हैं कि वे युद्ध में गए थे और वहाँ से घायल होकर लौटे, उसके बाद उनकी मृत्यु हो गयी।

इसके पीछे कुछ और भी हम अनुमान लगा सकते हैं कि जब हृदय में सच्चाई होती है तो भजन की बाधाएँ भगवान् स्वयं दूर कर देते हैं परन्तु होनी चाहिए सच्ची लगन। श्रीमद्भागवत में प्रथम स्कन्ध के छठवें अध्याय में नारदजी के पूर्व जन्म की कथा आती है। पूर्व जन्म में नारद जी दासी पुत्र थे। नारद जी भजन करना चाहते थे परन्तु उनकी माँ स्नेह-वश उन्हें अपने पास रखना चाहती थीं। उनका घर पर बिल्कुल भी मन नहीं लगता था। उनके हृदय की सच्चाई को देखकर भगवद्-इच्छा से एक घटना घटी। उनकी माँ जब गाय दोहने के लिए जा रहीं थीं तो रास्ते में एक काले सर्प ने उन्हें काट लिया और वहीं उनकी मृत्यु हो गयी। नारद जी को पता चला तो वे रोये नहीं बल्कि प्रसन्न हो गए और उन्होंने अपनी माँ की मृत्यु को भगवान् का अनुग्रह माना और भगवान् का भजन करने के लिए हिमालय की ओर चले गए।

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ।
अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥

(भा. १/६/१०)

अतः जब हृदय में सच्ची तड़प होती है भगवान् से मिलने की तो भजन की बाधाएँ भी भगवान् दूर करते हैं। लेकिन हम लोगों के अन्दर सच्चाई नहीं है, हम लोग वासनाओं के भूखे हैं, धन-सम्पत्ति के भूखे हैं –

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥

(भा. ५/१९/२७)

अगर कोई भजन कर रहा है और उसके बदले भगवान् से कुछ माँगता है तो ये बात जरूर है कि भगवान् माँगी हुयी चीजें देते हैं। धन माँगोगे धन मिलेगा, जो भी माँगोगे वह मिलेगा लेकिन भगवान् के चरणकमल नहीं मिलेंगे। भगवान् के चरणकमल तो तभी मिलेंगे जब अनन्तकाल के लिए इच्छाएँ खत्म कर दोगे। जो सत्यता पूर्वक केवल भगवान् को चाहता है, भगवान् स्वयं उस भक्त की समस्त बाधाओं को दूर करते हैं। इसलिए हम तो यही मानते हैं कि भगवद्-इच्छा से ही भोजराज का शरीर पूरा हुआ। भोजराज जाते समय कह गए थे कि मीरा से कुछ मत कहना, मीरा प्रेम की सूर्य है, इसका गिरिधर से सच्चा प्रेम है।

जैसे गोपियों ने कहा था श्रीकृष्ण से कि हम सभी विषयों को छोड़कर फिर तुम्हारे पास आयी हैं। जहाँ कोई भोग-वासना है ही नहीं, वही है गोपी प्रेम। मीरा के अन्दर कोई वासना नहीं थी इसीलिए तो नाभाजी ने उन्हें गोपी माना है।

शुरू से ही परिवार के लोग मीरा से चिढ़ते थे, जब भोजराज का शरीर पूरा हो गया तो सब लोग मीरा के पीछे पड़ गए कि तुम सती हो जाओ। सब चाहते थे कि अच्छा मौका है, यह भी मर जाए लेकिन मीरा के शब्द देखो, मीरा बोली – मैं क्यों सती होऊँ, मेरा तो पति मरा ही नहीं है, मेरा तो अविनाशी पति है और अविनाशी कभी मरता नहीं है। मीरा ने पद गाया –

मीरा लागो रंग हरि, औरन रंग अटक परी।
चूड़ो म्हारे तिलक अरु माला, सील बरत सिंगारो।
और सिंगार म्हारे दाय न आवै, यो गुरु ग्यान हमारो।
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ।
जिण मारग म्हांरा साध पधारे, उण मारग म्हे जास्यां।
चोरी न करस्याँ जिव न सतास्यां, कांई करसी म्हांरो कोई।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्याँ, यो तो बात न होई।
सता न होस्याँ गिरधर गास्याँ, म्हारो मन मोह्यो धन नामी।
जेठ बहू को नातो न राणाजी, हूं सेवक थे स्वामी।
गिरधर कंथ गिरधर धनि म्हांरे, मात पिता वीर भाई।
थे थांरे मैं म्हारे राणाजी, यूं कहे मीरा बाई॥

अब हमारा इस संसार में कहीं सम्बन्ध रहा ही नहीं। न माँ, न बाप, न पति ;ये शरीर अब गिरिधर का है। इसीलिए गिरिधर को ही गाऊँगी। हमारा चूड़ा है – तिलक और माला तथा शील-गुण हमारा श्रृंगार है। लोग निन्दा करते हैं करते रहें लेकिन मेरा रास्ता कभी नहीं बदलेगा। मैं उसी रास्ते पर चलूँगी, जिस पर संत लोग चलते हैं। मुझे किसी का डर नहीं है क्योंकि न तो मैं चोरी करती हूँ, न ही किसी जीव को कष्ट देती हूँ और न कोई पाप करती हूँ। इसीलिए मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता है। जब एक गिरिधर को पति मान लिया फिर किसी संसारी पुरुष को पति नहीं मान सकती हूँ। हाथी पर चढ़ने के बाद अब गधे पर नहीं चढ़ूँगी। ये संसारी पति सब गधे की तरह हैं, इन गधों से मैं कैसे प्रेम कर सकती हूँ?

आगे मीरा कहती है –

'सता न होस्याँ गिरधर गास्याँ, म्हारो मन मोह्यो धन नामी।'

राणा जी! जब मैं विधवा हूँ ही नहीं तो फिर सती क्यों होऊँ? मैं तो अपने पति गिरिधर का गुण गाऊँगी। मेरा सब सम्बन्ध गिरिधर से है – गिरिधारी ही मेरा धन है, गिरिधारी ही मेरे माता-पिता हैं, गिरिधारी ही मेरे पति हैं। तुम जाओ, हमारा तुम्हारा मत नहीं मिलता। मीरा ने सती होने से मना कर दिया।

इसके कुछ वर्ष बाद राणा सांगा की मृत्यु हो गयी। उसके बाद राजगद्दी पर उनके दूसरे बेटे राणा रत्नसिंह जी बैठे हैं। रत्न सिंह बड़े सुन्दर थे लेकिन चार साल ही वे गद्दी पर रहे और मार डाले गए और उस मृत्यु का कारण भी 'भोग' था।

इनका इतिहास इस प्रकार है – रत्न सिंह जी का किसी राजवंश की लड़की से प्रेम था, उसका विवाह दूसरे पुरुष से हुआ। जिससे विवाह हुआ था वह रतन सिंह जी का रिश्ते में कोई लगता था ;वह भी बड़ा वीर था। इन्होंने सोचा उसको हम मार डालें। वह भी बड़ा सावधान रहता था। एक बार जंगल में शिकार करते समय रतन सिंह ने उस पर हमला किया परन्तु होनहार वश वह बच गया और उसी ने इनको मार डाला।

इसके बाद इनके सौतेले भाई राणा विक्रम गद्दी पर बैठे। विक्रम के शासनकाल में मीरा के ऊपर बहुत अत्याचार हुए। सर्प का पिटारा मीरा को मारने के लिए विक्रम के ही समय में भेजा गया था।

'विषई कुटिल एक भेष धरि साधु लियौ-
कियौ यों प्रसंग मो सौं अंग-संग कीजियै।
आज्ञा मोकौं दई आप लाल गिरिधारी अहो-
सीस धरि लई करि-भोजन हूँ लीजियै॥'

मीरा बड़ी सुन्दरी थीं। एक कामी पुरुष इनके रूप पर मोहित था। मीरा गिरिधर के अलावा कभी किसी की ओर नहीं देखती थीं। उसने विचार किया कि क्या उपाय किया जाए, जिससे मीरा चक्कर में आ जाए। उनके यहाँ साधुओं को कोई रोक-टोक नहीं थी। मीरा को संत बड़े प्यारे लगते थे। एक दिन की बात है वह) विषयी (कामी पुरुष सुन्दर साधु का वेष बनाकर मीरा के पास आया और उनसे बोला कि मैं गिरिधारी लाल का भक्त हूँ, उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि तुम जाकर मीरा के साथ अंग-संग करो।

कामियों को लज्जा तो होती नहीं है। उस जमाने में भी दुष्ट लोग थे। मीरा ने जब गिरिधारी लाल का नाम सुना तो वे सच्ची भक्ता थीं गिरिधारी कीं और उनकी साधु-वेष पर भी निष्ठा थी, उन्होंने उस वेषधारी साधु का

भी अपमान नहीं किया। वे बोलीं – महाराज ! गिरिधारी की आज्ञा हमारे सिर पर है, पहले आप भोजन कर लें। "वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि खूब जादू चला। ऐसे बहुत से पाखंडी होते हैं जो संत-वेष में लोगों को ठगते हैं।

लक्ष्मण जी को जब शक्ति लगी थी, वे मूर्छित हो गए थे। उस समय सुषेण वैद्य ने बताया कि द्रोणगिरि पर्वत से संजीवनी बूटी को कोई ले आये, उससे इनके प्राण बच सकते हैं। हनुमानजी बूटी लेने के लिए चले, रास्ते में कालनेमि राक्षस साधु का वेष धारण करके बैठ गया। हनुमानजी ने उसको देखा तो चक्कर में आ गए। आकाश से उतरकर तुरन्त उसके पास गए, उसे दण्डवत प्रणाम किया। वह हनुमान जी से कहने लगा कि मैं त्रिकालदर्शी हूँ, मैं तुम्हें ऐसा मन्त्र दूँगा जिससे संजीवनी बूटी यहीं आ जायेगी। हनुमान जी बोले – "अवश्य गुरुदेव ! हम आपसे मन्त्र जरूर लेंगे, आप जैसा त्रिकालदर्शी गुरु कहाँ मिलेगा।" कालनेमि बोला – "अच्छा तुम पहले जाओ स्नान करके आओ उसके बाद मन्त्र देता हूँ।" हनुमान जी स्नान करने गए, वहाँ शाप के कारण मगरी बनी एक अप्सरा रहती थी। कालनेमि ने हनुमानजी को वहाँ इसलिए भेज दिया था कि हनुमानजी को वह खा जाए। उसने हनुमानजी का पैर पकड़ लिया, वे तो परम बलवान हैं उन्होंने उसे मार डाला। वह दिव्य देह धारण करके आकाश में चली गयी, जाते समय उसने बताया कि हे वानरराज ! वह त्रिकालदर्शी गुरु नहीं अपितु आपको ठगने के लिए साधु-वेष में कालनेमि राक्षस है। वह आपको रोक रहा है जिससे आप संजीवनी बूटी लेने न जा पायें। हनुमानजी स्नान करके आये और बोले – "अच्छा गुरूजी ! पहले आप दक्षिणा ले लें, मन्त्र बाद में देना।" हनुमान जी ने उसे पूँछ में लपेटकर पटक-पटक कर मार डाला।

इसी तरह रावण ने भी साधु-वेष धारण किया था और सीता जी उसके चक्कर में आ गयीं थीं और रावण उनका हरण करके ले गया था लेकिन दम्भ-पाखण्ड ज्यादा देर तक नहीं टिकता, एक दिन वास्तविकता सामने आती ही है –

उघरहिं अंत न होइ निबाहू।
कालनेमि जिमि रावन राहू॥
किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू।
जिमि जग जामवंत हनुमानू॥

(रा.च.मा.बाल. ७)

इसलिए साधु की पहचान वेष से नहीं हृदय से होती है। जैसे जाम्बन्त, हनुमान आदि बन्दर के वेष में रहते थे लेकिन थे तो साधु।

मीरा जी समझ तो गयीं थीं कि ये कोई पाखण्डी है, भोग-वासना पूर्ति के लिए मेरे पास आया है परन्तु भक्त किसी में अभाव नहीं करते हैं, उन्होंने उस विषयी-साधु को भी प्रेम से भोजन करवाया। लेकिन मीरा कितनी चतुर थीं, जब उसने भोजन कर लिया तो बोलीं – "अच्छा जी! आप हमारे साथ शयन कीजिए।" बोले – "चलो।" मीरा उन्हें मंदिर में ले गयीं ठाकुर जी के सामने ;वहाँ उन्होंने पलंग बिछाया। वहाँ बहुत से साधु-संत बैठकर कीर्तन कर रहे थे। वे सब लोग बड़े आश्चर्य में पड़ गये कि मंदिर में ये क्या हो रहा है।

'सन्तनि समाज में बिछाया सेज बोलि लियौ-
शंक अब कौन की निशंक रस भीजियै।'

पलंग पर मीरा जी बैठ गयीं और बोलीं – "आइये महाराज जी! हमारे साथ अंग-संग करने की अपनी इच्छा पूरी कीजिए।" वहाँ बहुत से भक्त लोग बैठे थे, वे बोले – "ये क्या हो रहा है? " मीरा जी बोलीं – "इनको गिरिधारी लाल जी ने मेरे साथ अंग-संग करने की आज्ञा दी है ;इसलिए मैं इनको बुला रही हूँ।" अब तो जितने संत थे, सबको उस पर बड़ा क्रोध आया। अरे, ये बड़ा पाखंडी है, गिरिधारी लाल से परमीशन लाया है भोग की। उसका मुँह सफेद पड़ गया, उसके हृदय से सब विषय-वासना चली गयी, वह मीराजी के चरणों में गिर पड़ा और बोला –

'सेत मुख भयौ विषैभाव सब गयौ नयौ-
पाँयन पै आय मोकौं भक्तिदान दीजियै ॥'

"हे देवि ! मैं महापापी हूँ, आप मेरे ऊपर दया कर दो और मुझे भक्ति का दान दो।" मीरा के शुद्ध-भाव के कारण उसका विषय-भाव सदा के लिए नष्ट हो गया। उन्होंने बिना फटकारे, बिना दुर्वचन बोले मधुरता से उसे सुधार दिया।

हम सबको भी इतना शुद्ध बनना चाहिए कि हमारे पास भी कोई दूषित भाव लेकर आये और हम उसको भी पवित्र कर दें। वहाँ पर बैठे बहुत से संत इस घटना को देख रहे थे। इस घटना से उनके मन में मीरा के प्रति और अधिक सम्मान बढ़ गया परन्तु राणा जी का और द्वेष बढ़ गया।

राणाजी उपाय सोचने लगे कि इसका यश तो बढ़ता ही जा रहा है, इसे मारना जरूरी है। उन्होंने बीजा को बुलवाया।

बीजा – राणा जी ! अब हम ऐसा उपाय बताते हैं कि जिससे मीरा बच नहीं सकती।

राणाजी – वह उपाय क्या है बताओ बीजा ! ।

बीजा – राणा जी ! एक भयानक काला सर्प लाया जाय और उसको डिबिया में बन्द करके मीरा के पास भिजवा दिया जाय और कहलवा देंगे कि इसमें शालिगराम भगवान् हैं। जैसे ही मीरा उसको खोलेगी, वह सर्प उसको अपने-आप काट लेगा।

राणा जी (अति प्रसन्नता के साथ) – ठीक बात है, ऐसा ही किया जाए।

बीजा किसी सपेरे से बहुत ही जहरीला काला नाग लेकर आया और उसको राणा जी ने दासियों के हाथों मीरा के पास भिजवा दिया। इस घटना को स्वयं मीरा ने अपने पद में लिखा है। उस समय वे गिरिधर के गुण गा रही थीं। भगवान् के गुण-गान को लोग मजाक समझते हैं। भगवान् के गुण गाना, उनके सामने नाचना इसको लोग बुरा समझते हैं क्योंकि वे भक्ति के रहस्य से अनभिज्ञ हैं, वे भक्ति जानते ही नहीं हैं।

पद्मपुराण में स्वयं भगवान् ने नारद जी से कहा है –

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

"नारद ! मैं वैकुण्ठ में नहीं रहता हूँ, योगियों के हृदय में नहीं रहता हूँ, मैं तो वहीं रहता हूँ जहाँ हमारे भक्त गाते हैं, नाचते हैं।" अतः उस समय मीरा जी श्रीकृष्ण के गुणगान गा रही थीं –

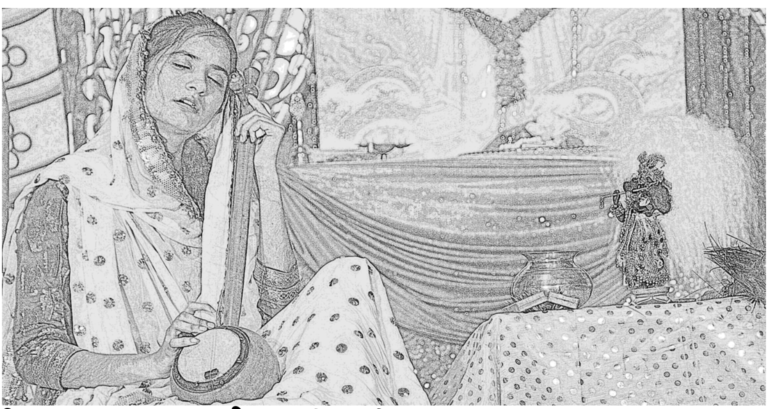

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियौ जाय॥
न्हाय धोय जब देखन लागी शालग्राम गई पाय।

दासी आयी और बोली रानी सा ! राणा जी ने आपके लिए इस पिटारी में शालिगराम जी भेजे हैं। मीरा ने प्रभु का नाम सुनते ही उस पिटारी को दौड़कर ले लिया। दासी बोली – "हम जा रहे हैं, आप नहा-धोकर फिर इसको खोलना।' दासी चली गयी। मीरा ने वैसा ही किया, नहा-धोकर उस

पिटारी को खोलकर देखा तो उनकी दिव्य भावशक्ति के कारण वह विषधर सर्प शालिगराम बन गया।

गुप्तचरों ने आकर राणा जी को सूचना दी कि मीरा नहीं मरी। जब उसने पिटारी खोली तो उसमें से शालिगराम जी निकले। राणा जी ने बीजा को बुलाया और उसे डाँटा कि यह गलती कैसे हुयी? जो दुष्ट होता है उसे किसी पर भी विश्वास नहीं होता है। बीजा बोला – "हुकुम ! हमसे गड़बड़ी नहीं हुयी, मैंने तो विषधर सर्प ही भेजा था, यह मूर्ति कैसे बन गया, मैं नहीं जानता।" इतने बड़े चमत्कार को देखकर भी राणा जी को मीरा जी के प्रति श्रद्धा पैदा होने की जगह और चिढ़ पैदा हो गयी और राणा ने संकल्प किया कि हम मीरा को मारकर ही रहेंगे।

जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ॥
न्हाय धोय जब पीवन लागी होई अमर पचाय ।

एक बार राणा संग्राम सिंह के समय में मीरा को जहर दिया गया था। दूसरी बार राणा विक्रम के समय में मीरा को जहर दिया गया। जब मीरा सर्पों से नहीं मरी तो उन्होंने दासी के हाथों जहर का प्याला भिजवाया। मीरा ने नहा-धोकर जब उसको पिया तो वह विष उनके लिए अमृत बन गया। जैसे अमृत पीने से शरीर की कान्ति, पुष्टि बढ़ती है, वैसे ही मीरा की कान्ति बढ़ गयी जबकि विष पीने से तो गोरेपन में कालिमा आ जाती है, रूप-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कोई कितना भी उपचार कर ले परन्तु विष का कुछ न कुछ असर जरूर दिखता है।

महाभारत में कथा आती है नल और दमयन्ती की। राजा नल देवताओं से भी सुन्दर थे। एक बार राज नल को विषधर सर्प ने काट लिया था तो वे उसके जहर से इतने कुरूप हो गए थे कि उन्हें कोई पहचान नहीं सकता था, यहाँ तक कि दमयन्ती भी उन्हें नहीं पहचान पायीं थीं। विष सौन्दर्य को नष्ट करता है परन्तु मीरा की भक्ति के प्रभाव से विष को पीने से उनकी अंगकान्ति और बढ़ गयी, गिरिधारी की कृपा से वह तीक्ष्ण विष अमृत बन गया।

सूल सेज राणा ने भेजी दीजो मीरा सुलाय ॥
साँझ भई मीरा सोवन लागी मानो फूल बिछाय ।
मीरा के प्रभु सदा सहाई राखे विघन हटाय ।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरिधर पै बलि जाय ॥

राणा जी को जब पता चला कि विष का भी उस पर कोई असर नहीं हुआ तो फिर उन्होंने एक विषैली शैया बनवाई। जिसमें ऊपर तो ऐसा लगता है कि साधारण शैया है लेकिन उसके नीचे विषैले शूल लगे रहते हैं, जिनके चुभते ही आदमी तुरन्त खत्म हो जाय। मीरा के पास शैया भेजी गयी। रात्रि को जब उस पर मीरा सोने लगीं तो वे नुकीले शूल उनके लिए फूलों की तरह कोमल हो गए। इस तरह मीरा के ऊपर अनेकों अत्याचार हुए परन्तु गिरिधर गोपाल ने सभी विघ्नों से मीरा की रक्षा की।

मीरा को भी पता लग जाता था कि अब राणा जी हमें मारने के लिए कौन-सी योजना बना रहे हैं। मीरा के व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण था। राणाजी रोज एक नई गुप्तचरी मीरा के पास भेजते थे, यह देखने के लिए कि मीरा क्या-क्या करती है? कौन-कौन उसके पास आता है? परन्तु मीरा के व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण था कि जो भी गुप्तचरी उनके पास जाती थी, वह उनकी विरह-दशा को देखकर के उनके साथ कृष्ण-प्रेम में रंग जाती थी, और उनकी सहेली बन जाती थी। मीरा रात्रि में सोती नहीं थी, सारी रात कृष्ण-गुणगान गाती थी। साधन जब ठीक तरह से बनता है तो सभी विकार अपने-आप चले जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेषादि सब नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए भगवान् ने कहा कि मेरे में मन को लगाओ।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥

(गी. १२/८)

इसमें जरा-भी संशय नहीं है, मन भगवान् में लगा और विकार खत्म। जब मन भगवान् में नहीं लगता है, तभी सारे विकार चित्त में आते हैं।

मीरा जी रात भर जागती थीं भगवान् के प्रेम में। आज तो नींद नहीं आती है तो लोग नींद की गोली खाते हैं कि किसी तरह से नींद आ जाए। ये

सब विमुखता के लक्षण हैं। विमुखता में अशान्ति होती है और भगवान् ने कहा है कि 'अशान्तस्य कुतः सुखम्' जब चित्त सुखी नहीं तो चाहे जितनी भी गोलियाँ खा लो। मीरा परिस्थितियों से लड़ीं, इसको साधन कहते हैं। दिव्य भक्तिमय गुणों को अपने अन्दर लाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जिसको लगन लग जाती है, वह कहीं सोता है, गुप्तचरियाँ देखतीं थीं कि मीरा कृष्ण-विरह में रात भर तड़प रही है –

दरस बिन दूखण लागे नैन।
जब ते तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन॥
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे लागे बैन।
विरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करबत ऐन॥
कल न परत मोहि हरि मग जोवत, भई छमासी रैन।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलौगे, दुख मेंटन सुख दैन॥

उनको एक रात छः महीने की लगती थी, नींद नहीं आती थी, सारी रात करवट बदलते-बदलते निकल जाती थी, राणा जी जिन गुप्तचरियों को भेजते थे, उन्हें भी यही बीमारी लग जाती थी और वे भी कृष्ण-कृष्ण कहने लगती थीं। जब सुबह राणा जी पूछते कि बता सारी रात मीरा क्या करती है? तो वह गुप्तचरी कुछ नहीं बता पाती थी, वे समझ जाते कि इस पर मीरा का असर हो गया है, जरूर मीरा कोई जादू-टोना जानती है। तब राणा जी दूसरी गुप्तचरी को सब समझाकर भेजते कि मीरा जादू-टोना जानती है, उससे सावधान रहना और उसकी सारी खबर लाकर हमें बताना। परन्तु मीरा के संग से उसकी स्थिति भी वैसी ही हो जाती थी। क्योंकि महापुरुष की हवा से ही कृष्ण-प्रेम आ जाता है, और दुष्ट के पास बैठने से बिना प्रयत्न के राग-द्वेष आ जाते हैं।

एक गुप्तचरी ने पूछा – रानी साहिबा ! आप सोती क्यों नहीं हैं? मीरा उसको सखी समझकर कहती हैं –

सखी मेरी नींद नसानी हो ।
पिय को पन्थ निहारतॉं सब रैन विहानी हो ॥
सखियन मिलि मिलि सीख दई पै एक न मानी हो ।
बिन देखे कल ना परै जिय ऐसी ठानी हो ॥
अंग छीन व्याकुल भई मुख पिय, पिय वानी हो ।
अन्तर वेदन विरह की वहि पीर न जानी हो ॥
ज्यौं चातक घन को रटै मछरी बिन पानी हो ।
मीरा व्याकुल विरहिनी सुधि बुधि बिसरानी हो ॥

मेरे भाग्य में विधाता ने नींद लिखी ही नहीं है। गुप्तचरी ने पूछा – "क्यों?" बोलीं – "मैं अपने साँवरे के इन्तजार में जागती हूँ, उसकी बाट देखती हूँ, पता नहीं किधर से आ जाए।" ये प्रेम का दीवानापन होता है। इसको हम जैसे प्रेमहीन व्यक्ति नहीं समझ सकते हैं। गुप्तचरियाँ सिखाती हैं – "देखो, तुम रानी हो रोना छोड़ो और सबसे बातचीत किया करो, तुम किसी से बोलती नहीं हो, अकेली रहती हो, चलो महल में देखो वहाँ उत्सव हो रहा है, अकेली पड़ी रोती रहती हो, सबसे मिला करो, मन बहल जाएगा।" परन्तु जिसको भगवान् से मिलने की लगन लग गयी है, उसे किसी से मिलना अच्छा नहीं लगता है। जिन्हें भगवान् से मतलब नहीं, हम जैसे विमुख लोग ही बैठकर गप्पें मारते हैं। भगवद्भक्त तो इस फिकर में रहता है कि प्रभु कैसे मिलेंगे? मीरा जी का शरीर एकदम दुबला-पतला हो गया था।

'सखियन मिलि मिलि सीख दई पै एक न मानी हो ।'

एक गुप्तचरी मीरा के प्रेम को देखकर प्रभावित हुयी। उसने मीरा से कहा कि मीरा ! तुम साधुओं में गाना-नाचना छोड़ दो, नहीं तो तुम्हें मार डाला जाएगा। तो मीरा उससे सखी समझकर कहती हैं –

'बिन देख्याँ कल नाहिं पड़त जिय ऐसी ठानी हो ॥'

अथवा

सुनो री सखी तुम चेतन होइ कै, मन की बात कहूँ ॥
साधु – संगति कर हरि सुख लीजै, जग सूँ दूर रहूँ ।
तन-धन मेरो सबहि जावो, भलो मेरो सीस लहूँ ॥

"सुनो सखी ! मैं किसी के रोकने से नहीं रुक सकती। मैं मृत्यु को गले लगा लूँगी लेकिन संत-संग नहीं छोडूँगी।" मीरा जब नहीं मानी तो एक दिन राणा जी स्वयं गए तलवार लेकर मीरा को मारने के लिए लेकिन वहाँ उन्हें ठाकुर जी का भयानक रूप दिखाई पड़ा तो वे वहाँ से भागे।

भक्तों के ऊपर जो विघ्न-बाधाएँ आती हैं, उनसे भगवान् उनकी रक्षा करते हैं। भगवान् ने स्वयं गीता में प्रतिज्ञा की है –

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥

(गी. १८/५७, ५८)

जिसने सब कुछ अध्यात्म चित्त से मुझे अर्पण कर दिया है, जिसके अन्दर समत्व है, जो मेरे परायण है और मुझमें जिसका चित्त लगा हुआ है, वह मेरी कृपा से समस्त संकटों को सहज में पार कर लेता है। ये चीजें जिसके अन्दर हैं तो दुनिया की कोई मुसीबत उसको नहीं सतायेगी और उसको संसार में मारने वाला कोई नहीं, स्वयं काल भी नहीं।

बादशाह अकबर का मीरा के दर्शन के लिए जाना –

'रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये-
लिये संग तानसेन देखिवे कौं आयो है।'

तानसेन अकबर के दरबार के नौ रत्नों में से एक रत्न थे और वे गुसाँई विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। अकबर के दरबारी होने से, जब वे दरबार में जाते तो दूसरा वेष रहता था और जब ब्रज में श्रीनाथ जी के दर्शन के लिए जाते तो वैष्णव-वेष में जाते थे। ऐसा क्यों है? इसका कोई उत्तर नहीं है,

क्योंकि काल की गति ही ऐसी थी। उस समय यवन राज्य था तो उसी हिसाब से रहना पड़ता था। एक बार अकबर ने तानसेन से पूछा – "तानसेन ! हम चित्तौड़ की महारानी मीराबाई के बारे में बहुत चर्चा सुन रहे हैं। हमने सुना है कि मीरा बड़ी सुन्दर है, उसके जैसी सुन्दरी देश में कहीं नहीं है।" मीरा जी की सुन्दरता अलौकिक थी और स्वभाविक थी बिना किसी साज-श्रृंगार के। मीरा की इसीलिये तो इतनी निन्दा हुयी, क्योंकि सुन्दर स्त्री का शील सुरक्षित रहे, ये बड़ा कठिन है। नीतिशास्त्र में लिखा है - "भार्या रूपवती शत्रु" सुन्दर स्त्री शत्रु है क्योंकि अनेक लोग उस पर मुग्ध हो जाते हैं और उसके पीछे उनसे बैर होता है। दूसरा कारण इसलिए भी शत्रु है क्योंकि उसकी आसक्ति ज्यादा हो जाती है।

अतः अकबर ने भी मीरा की सुन्दरता की चर्चा सुन रखी थी; इसीलिये उसने तानसेन से पूछा तो तानसेन बोले – "जहाँपनाह ! यह बात बिल्कुल सत्य है और इसलिए भी सत्य है कि करोड़ों कामदेवों से भी सुन्दर स्वयं श्रीकृष्ण भी मीरा के दीवाने बने घूमा करते हैं।" ये स्वयं मीरा ने एक पद में कहा है कि ऐसा कोई क्षण नहीं होता, जब श्यामसुन्दर हमारे साथ नहीं खेल रहे हों –

रैण दिनां वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ ताहि रिझाऊँ ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ ॥

रात-दिन श्रीकृष्ण मीरा जी के साथ खेलते थे। भगवान् भक्तों के साथ रात-दिन खेलते हैं, सारी भक्तमाल इससे भरी पड़ी है। इसका अनुभव सूरदास जी ने भी लिखा है। वे अंधे थे तो हर समय उनके साथ ठाकुर जी रहते थे और उनकी रक्षा करते थे।

'अपने दीन दास के हित लगि फिरते संग-संग ही ।'

लेकिन हम जैसे मूर्ख लोग इसको नहीं समझ सकते क्योंकि हमारे अन्दर न ऐसा भाव है, न ऐसी श्रद्धा है, न आस्था है और न विश्वास है। भगवान् ने भक्त माधवदास जी की शौच धोयी, धनुष-बाण लेकर

तुलसीदासजी की कुटिया की रखवाली की; इसको समझने के लिए बहुत बड़ी आस्था, बहुत बड़ा विश्वास चाहिए।

तानसेन ने कहा कि जहाँपनाह! मीरा के पीछे-पीछे श्यामसुन्दर घूमते हैं, इसी-से आप अनुमान लगा लीजिए कि मीरा कैसी होगीं। अकबर बोला – "तानसेन! चित्तौड़ से हमारी शत्रुता है, हम उन्हें देखने कैसे जाएँ? अगर किसी को पता लग गया तो मारे जायेंगे परन्तु कुछ भी हो मैं मीरा को देखना जरूर चाहता हूँ, इसलिए तुम कुछ उपाय करो।" वे बोले – "जहाँपनाह! उपाय एक ही है कि उनके यहाँ साधुओं को कोई रोक-टोक नहीं है, हम लोग साधु-वेष में चलते हैं।"

साधु का वेष बनाकर अकबर और तानसेन दोनों मीरा के महल में पहुँचे। तानसेन जानता था कि मीरा को गिरिधर गोपाल का गुणगान सुनना अच्छा लगता है। भक्तों को कुछ भेंट देना हो तो उनकी सबसे बड़ी भेंट यही है कि उन्हें भगवद्-गुणगान सुनाओ, इसी से वे प्रसन्न होते हैं; बाकी हम जैसे तो कोई पैसा, लड्डू-कचौड़ी दे जाए तो उस पर प्रसन्न होते हैं क्योंकि हमारे ऊपर कलियुग सवार है, हम इसी को भेंट समझते हैं। तानसेन भक्त था वह जानता था कि मीरा को भगवान् का गुणगान सुना दो तो वह खुश हो जायेगी। दोनों ने मीरा के मंदिर में प्रवेश किया।

आगे तानसेन पीछे अकबर ;देखा – सामने मीरा के गिरिधारी विराज रहे हैं, उन्होंने ठाकुर जी को प्रणाम किया और पास में मीरा भी थीं उनको भी प्रणाम किया। तानसेन ने उठाया तम्बूरा और मीरा जी से कहा कि मैं गिरिधारी लाल को एक पद भेंट करना चाहता हूँ। मीरा ने कहा – हाँ! हाँ! हमारे गिरिधारी का यश गाइये। भक्त भगवान् का यश सुनकर प्रसन्न होता है न कि अपनी बड़ाई, अपनी प्रशंसा सुनकर। हम जैसे कलियुगी

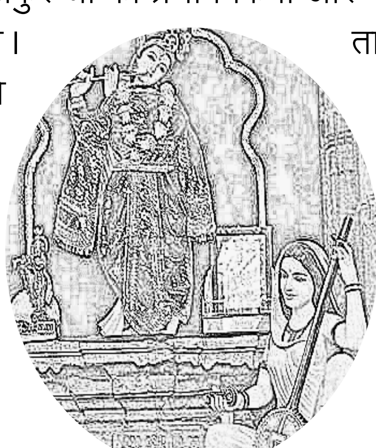

लोग हैं जो अपनी प्रशंसा सुनने के भूखे रहते हैं। तानसेन ने पद गाया –

सुमिरण हरि का करौ रे जासौं होय भव पार। यही सीख जान मान कह्यौ है पुराण में भगवान् आप करतार॥ दीनबन्धु दयासिन्धु पतितपावन आनन्दकन्द तोसे कहत हौं पुकार। 'तानसेन' कहै निर्मल सदा लहिये नर देही नहिं बार बार॥

परन्तु तानसेन से एक भूल हो गयी। तानसेन हर पद में अपने नाम की छाप जोड़ता था, उसने यहाँ भी वही गलती कर दी। जब तानसेन ने अपने नाम की छाप जोड़ी तो उसी समय अकबर ने उसकी ओर इशारा किया; क्योंकि अकबर को डर था कि अगर चित्तौड़ वालों को जरा-भी संशय हुआ तो हम लोग बच नहीं पायेंगे। तुरन्त अकबर ने एक मणिमाला निकाली जो छिपाकर ले गया था, वह मीरा को देने लगा, मीरा ने माला लेकर गिरिधर को पहना दी। दोनों को तुरन्त वहाँ से भागना पड़ा क्योंकि अगर राणा को पता लग गया तो दोनों मारे जायेंगे।

अकबर जब चला गया तो उसके बाद राज्य में एक खबर फैल गयी कि मीरा के पास दो साधु आये थे और वे ऐसी मणि-माला देकर गए, उसके जैसी दुनिया में माला नहीं है। बात राणा जी तक पहुँची तो वे मीरा के महल में गए और मीरा से बोले – "कहाँ है वह मणिमाला? " मीरा ने इशारा कर दिया गिरिधारी की मूर्ति की ओर। राणा जी ने उस हार को अपने हाथ से उतारा और ध्यान से उसे देखा तो उसमें अकबर नाम लिखा था। राणा जी बोले – "ओहो! चित्तौड़ में हमारा शत्रु आया और बच के चला गया, ये हमारी राजपूतानी शान में धब्बा लग गया। ये सब मीरा के कारण हुआ, सबकी जड़ यही है। अब मैं इसको मारकर ही रहूँगा। देखता हूँ अब मीरा को कौन बचाता है? "

राणा जी ने जाकर दरबार में घोषणा कर दी कि हमारा शत्रु बादशाह अकबर साधु-वेष बनाकर मीरा के पीछे यहाँ आया और सुरक्षित लौटकर वापस चला गया। मीरा जब तक रहेगी यहाँ साधु आयेंगे। अब मीरा को मिटा देना है सदा के लिए। राणा जी की बात कौन टाल सकता है, सभी

दरबारियों ने हाँ कर दी। पर मीरा को मारा कैसे जाए, वह तो बार-बार बच जाती है। वे बोले – "जब तक मीरा के गिरिधारी लाल यहाँ हैं, तब तक मीरा सुरक्षित है। इसके गिरिधारी लाल को ही हटा दो।"

मीरा दिन-रात ठाकुर जी की सेवा करती रहती थीं। राणा जी ने पता लगा लिया कि मीरा किसी सेवा में व्यस्त है तो वे गए और मीरा के गिरिधर गोपाल को उठाकर ले गए और उन्होंने एक बड़े सरोवर में गिरिधारी लाल की मूर्ति को फेंक दिया। मीरा को पता चला, किसी ने बताया कि तेरे गिरिधारी लाल को राणा जी ने ले जाकर सरोवर में फेंक दिया, तो सुनते ही वे दौड़ती हुई उस सरोवर के पास पहुँचीं, जहाँ राणा जी ने गिरिधारी लाल को फेंका था। उन्हें ठाकुर जी के वियोग में ऐसा कष्ट हो रहा था जैसे उनके प्राण निकल रहे हों ;क्योंकि गिरिधारी लाल उनके प्राण थे। वहाँ खड़े होकर राणा जी हँस रहे थे। मीरा ने उनसे पूछा – "मेरे श्याम कहाँ हैं? " वे बोले – "अब तुम्हारे श्याम नहीं मिलेंगे, उन्हें तो मैंने सरोवर में फेंक दिया है।" इतना सुनते ही मीरा सरोवर में कूद गयी।

भक्त के व्रत की रक्षा भगवान् करते हैं। मीरा जी की ब्रज-वृन्दावन में निष्ठा थी। वे कूदी तो थीं सरोवर में, लेकिन निकलीं वृन्दावन में, यमुना में। हाथ में गिरिधर गोपाल थे। ऐसी घटनाएँ बहुत से भक्तों के साथ हुयीं हैं। जैसे – **पहला उदाहरण –**

सिकन्दर लोदी जब बनारस गया था तो उसने कबीरदास जी की चर्चा बहुत सुन रखी थी, उसने कबीर को बुलबाया। वे पहुँचे और खड़े हो गए। सिपाहियों ने कबीर से कहा कि बादशाह को प्रणाम करो। कबीरदास जी ने कहा कि ये सिर सिर्फ राम के सामने झुकता है, किसी मनुष्य के सामने नहीं। सुनकर सिकन्दर क्रोधित हो गया और उसने घोषणा कर दी कि इसको गंगा जी में डुबो दिया जाए। हजारों लोग इस दृश्य को देखने के लिए वहाँ गए, जो दुष्ट प्रकृति के लोग थे वे तो बोले – "अच्छा हुआ ! राम-राम कहने का यही फल है।" सिपाहियों ने लोहे की जंजीरों से बाँधकर कबीरदास जी को गंगा जी में डुबो दिया। सब लोगों ने समझा कबीर मर

गया होगा, सब लोग वापिस लौटने लगे, सिकन्दर भी हँसते-हँसते लौटने लगा परन्तु कुछ समय बाद देखते हैं कबीरदास जी गंगा जी के उस पार खड़े हैं और गा रहे हैं –

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हम को मिला जियावन हारा॥
अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मरैं जिन राम न जाना ।
साकत मरैं संत जन जीवैं, भरि-भरि राम रसायन पीवैं ।
हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं, हरि न मरैं हम काहे कूं मरिहैं ।
कहै कबीर मन मनहिं मिलावा, अमर भये सुख-सागर पावा॥

"सिकन्दर ! मैं नहीं मर सकता, जो अविनाशी की शरण ले लेता है, वह कभी मरता नहीं है ।" काल भी भक्तों का लोहा मानता है ।

दूसरा उदाहरण –

एक भक्ता हुई हैं रानी गणेशबाईजी । ये ओरछा नरेश मधुकरशाहजी की रानी थीं और बड़ी राम भक्त थीं । प्रतिवर्ष अयोध्या जातीं और श्रावण के एक महीने में अयोध्या में रहती थीं, राम उपासना करती थीं । एक बार श्रावण का महीना बीत गया कुछ दिन और हो गए वे लौटकर नहीं आयीं तो मधुकरशाह जी ने सन्देश भेजा कि तुम इतनी बड़ी भक्ता हो तो जब लौटकर आना तो राम जी को साथ में लेकर आना । उन्होंने भी संकल्प कर लिया कि मैं रामजी को साथ लेकर ही जाऊँगी अन्यथा शरीर छोड़ दूँगी । उन्होंने बहुत प्रयत्न किया परन्तु राम जी नहीं आये तो एक दिन यह कहते हुए कि राम तू नहीं आता है, मेरी लाज नहीं बचाता है तो मैं लौटकर वापिस नहीं जाऊँगी, इससे मरना अच्छा है और जाकर सरयू जी में कूद पड़ीं । सावन-भादों में नदियों में बाढ़ आती है । सरयू जी में अथाह पानी था, जब डूबने लग गयीं तो उस समय स्वयं राम जी आये और उन्हें पकड़कर किनारे पर लेकर आये । उन्होंने देखा साक्षात् प्रभु श्रीराम जी हैं तो वे बोलीं – "तुमने हमें क्यों बचाया है । तुम हमारे साथ चलते नहीं हो तो मैं जीवित रहकर क्या करूँगी ।" तो उनके प्रेम के आधीन होकर राम जी उनके साथ ओरछा आये ।

अस्तु ऐसे और भी बहुत से उदाहरण हैं। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि मीरा कूदी तो थीं चित्तौड़ के सरोवर में और प्रगट हुयीं वृन्दावन यमुना में।

वहाँ (यमुना किनारे) मीरा ने पूछा कि यहाँ कोई दीपक है, दीपक से मतलब ऐसा भक्त जो भक्ति का प्रकाश फैला रहा हो। लोगों ने कहा – "दीपक है तो सही यहाँ बाई जी ! लेकिन आप वहाँ जा नहीं सकेंगी।" लोगों ने उन्हें जीवगोस्वामी जी के बारे में बताया। उस समय वृन्दावन में जीव गोस्वामी जी थे, जो भक्ति का प्रकाश फैला रहे थे। वे स्त्री का दर्शन नहीं करते थे, बड़े विरक्त थे, उनकी विरक्ति की कोई कल्पना नहीं कर सकता है। उनके जीवन की एक घटना है – उनके गुरू रूप गोस्वामी जी उस समय के बहुत बड़े पण्डित माने जाते थे। एक बार किसी विद्वान् ने आकर रूप गोस्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा; परन्तु वे दीनता की प्रतिमूर्ति थे, उन्होंने कहा – भाई ! हम शास्त्रार्थ नहीं करते, जितनी देर शास्त्रार्थ में समय जाएगा, इससे अच्छा उतने समय कृष्ण-नाम गायेंगे। पहले शास्त्रार्थ बहुत चलता था, कई दिनों तक चलता रहता था, शास्त्रार्थ करने वाले विद्वान् लोग कई गाड़ियाँ भरकर साथ में पुस्तकें लेकर चलते थे, पता नहीं कब किस पुस्तक की आवश्यकता पड़ जाए। जब वह नहीं माना तो उन्होंने उसे विजयपत्र लिखकर दे दिया कि भाई ! तू जीत गया हम हार गए। इस हार-जीत में क्या रक्खा है, जितना समय व्यर्थ तर्क-वितर्क में जायेगा, उससे अच्छा उतनी देर कृष्ण-स्मरण करेंगे?

हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारे हरि के जायेंगे जीते जम के द्वार॥

वह पण्डित उस विजयपत्र को लेकर सबको बताते हुए कि मैंने शास्त्रार्थ में रूप गोस्वामी को जीत लिया है, चला जा रहा था। उसी समय जीव गोस्वामी जी यमुना जी में स्नान करके आ रहे थे, रास्ते में उन्होंने जब यह सुना तो वे उसके पास गए और उससे पूछा? ये क्या कह रहा है? वह बोला – "अरे, मैंने रूप गोस्वामी को जीत लिया है, ये विजयपत्र स्वयं उन्होंने लिखकर मुझे दिया है।" वे बोले – "अरे ! तू कैसे उन्हें जीत सकता

है। पहले तू मुझसे ही शास्त्रार्थ कर ले, मैं उनका शिष्य हूँ।" जीव गोस्वामी जी भी बड़े उद्भट विद्वान् थे। थोड़ी ही देर में उन्होंने उसे हरा दिया और उससे प्रमाण पत्र छीन लिया। किसी ने जाकर प्रसन्नता पूर्वक रूप गोस्वामी जी से कहा कि आपके शिष्य जीव ने उस अहंकारी पण्डित को हरा दिया है। इस बात को सुनकर रूप जी प्रसन्न नहीं हुए बल्कि बोले – "जीव ने उसे क्यों हराया? उससे शास्त्रार्थ क्यों किया? भक्त को तो दीन बनना चाहिए, हार मान लेनी चाहिए। महाप्रभु जी ने हमें यही उपदेश देकर यहाँ भजन करने भेजा था कि तिनका से भी छोटे बनकर रहना।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

भक्ति पथ का उल्लंघन किया जीव ने। इसलिए मैं उसका परित्याग करता हूँ।" उन्हें जब पता चला कि गुरुदेव ने परित्याग कर दिया है तो वे चले गए और जाकर यमुना जी के किनारे भयगाँव में नन्दघाट पर रहने लगे ; लेकिन उन्हें बड़ा दुःख था कि जब गुरु ही रुष्ट हैं तो हम जीवित रहकर क्या करेंगे, इससे अच्छा मर जाना चाहिए। लेकिन आत्महत्या करना भी ठीक नहीं है। अतः वे वहाँ जमीन के नीचे एक गुफा बनाकर रहने लगे और कई-कई दिन बाद थोड़ा-सा आटा घोलकर पी लेते अथवा कच्चे आटे की गोली-सी बनाकर खा लेते ;ऐसी वैराग्य की उनकी रहनी थी। भगवान् तो सब देखता है, भगवद्-इच्छा से एक दिन घूमते हुए सनातन गोस्वामी जी उस गाँव में पहुँचे। वे एक ब्रजगोपी के यहाँ भिक्षा माँगने गए और बोले – 'राधेश्याम मैया' वह कुछ कार्य कर रही थी, इसलिए उसे थोड़ा-सा समय लग गया तो वे लौटने लगे। वह ब्रजगोपी बोली 'अरे, ठाड़ौ रह बाबा ! कहाँ चल दियौ? थोड़ी देर तसल्ली रख; तोते अच्छो तौ हमारो घाट वारो बाबा जी है। अरे, हम लेउ जाएँ रोटी तौऊ नहीं खावै। कभी-कभी एकाध आटा की गोली बनाकर मुँह में डाल ले; याको वैराग्य कहें हैं।' वे उसकी बातों को सुनकर सोचने लगे ऐसा कौन-सा विरक्त है, मैं भी उसके दर्शन करूँगा। तो वह ब्रजगोपी उन्हें साथ में ले गयी जहाँ उनकी गुफा थी। उन्होंने जाकर गुफा में झाँककर देखा तो उसमें जीव गोस्वामी जी बैठे आँसू बहा रहे हैं।

जीव जी ने भी देखा अरे, ये तो हमारे गुरू जी के बड़े भाई हैं तो वे गुफा से निकलकर उनके चरणों में गिर पड़े।

सनातन गोस्वामी जी – अरे, जीव ! तुम यहाँ कैसे?

जीव गोस्वामी जी – गुरुदेव ने हमारा परित्याग कर दिया है।

सनातन गोस्वामी जी – चलो हमारे साथ।

वह जीव जी को साथ में ले गए और जाकर उन्होंने रूप गोस्वामी जी से कहा – रूप ! तुम सबमें श्रीकृष्ण को देखते हो तो क्या जीव में तुमने कृष्ण को नहीं देखा। क्या कृष्ण ने कह दिया है कि जीव को छोड़कर मैं सब जगह व्यापक हूँ। सुनकर रूप गोस्वामी बोले – जीव ! यहाँ आओ। जीव आकर गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े, रूप जी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। तो जीव गोस्वामी इतने विरक्त थे।

अतः लोगों ने मीरा जी को बताया कि यहाँ दीपक तो बहुत हैं पर उनमें सर्वोत्कृष्ट जीव गोस्वामी पाद हैं।

दीपक वही होता है जिसके हृदय में भक्ति होती है, बाकी तो हम जैसे लड्डू-पेड़ा दास घूमा करते हैं।

'वृन्दावन आईं जीव गुसाँईं सौं मिलि झिली-
तिया मुख देखिवे को पन लै छुटायो है।'

मीरा जी उनकी कुटिया की ओर गयीं उनसे मिलने। बाहर शिष्य खड़े थे, उन्होंने रोक दिया।

शिष्य – माताजी ! आप कहाँ जा रही हैं?

मीरा जी – हमें गोस्वामीपाद से मिलना है।

शिष्य – हमारे गुरुजी ! स्त्रियों का मुख नहीं देखते हैं।

मीरा जी (आवेश में) – मैंने भी व्रत ले लिया है कि मैं कृष्ण के अलावा किसी दूसरे पुरुष का मुँह नहीं देखूँगी।

शिष्य – फिर आप क्यों आयी हैं?

मीरा जी – मैं इसलिए आयी हूँ कि मैंने सुना है, इस वृन्दावन में श्रीकृष्ण ही एक पुरुष हैं, यहाँ तो शिवजी को भी गोपी बनकर आना पड़ा था। मैं राधारानी से पूछती हूँ कि इस वृन्दावन में दूसरे पुरुष का प्रवेश कैसे हुआ? आप अपने गुरुजी से पूछकर आइये कि ये दूसरा पुरुष कहाँ से आया? शिष्य लोग गए, बोले – गुरुदेव! एक स्त्री आयी है, आपका दर्शन करना चाहती है, हमने उससे कहा कि हमारे गुरुदेव स्त्री का मुख नहीं देखते परन्तु उसने कहा कि जैसे तुम्हारे गुरुजी का स्त्री मुख न देखने का व्रत है, वैसे ही मेरा भी श्रीकृष्ण के अलावा किसी दूसरे पुरुष को न देखने का व्रत है और उसने कहा कि तुम अपने गुरुदेव से पूछकर आओ कि इस वृन्दावन में तो श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं, ये दूसरा पुरुष कौन आ गया? और वे बोलीं कि मैं भी राधारानी से पूछती हूँ कि यह वृन्दावन में दूसरा पुरुष कहाँ से आया?

इस बात को सुनकर जीव गोस्वामी जी समझ गए कि यह साक्षात् कोई गोपी है, इसको संसार में कोई दूसरा पुरुष दिखाई ही नहीं पड़ रहा है और वे स्त्री मुख न देखने का अपना व्रत छोड़कर दौड़ पड़े और मीरा के चरणों में गिरने लगे; मीरा जी पिताजी! पिताजी! कहकर उनसे लिपट गयीं। यह महापुरुषों ने लिखा है कि मीरा एक पवित्रता की गंगा थीं। वे संतों को पिता समझकर एक छोटी-सी बच्ची की तरह उनसे लिपट जाती थीं। ऐसी दिव्य भावशक्ति थी मीरा के अन्दर।

'मीराबाई बिन को संतन पिता जानि उर लावै ।'

(श्रीहरिराम व्यास जी कृत 'व्यासवाणी')

संसार में पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकार की होती हैं। उनमें सर्वोत्तम वह है, जिसे अपने पति के अलावा कोई दूसरा पुरुष दिखाई ही नहीं पड़ता है।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं ।
बेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं ।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥

(रा.च.मा.अरण्य. ५)

इसलिए गोपी तो वही है, जिसको केवल कृष्ण दिखाई पड़ें, कोई दूसरा पुरुष न दिखाई पड़े।

एक कथा आती है कि एक बार श्रीकृष्ण गोपियों को छोड़कर चले गए, गोपियाँ उन्हें खोज रही थीं। ठाकुर जी उनकी परीक्षा लेने के लिए चतुर्भुज रूप धारण करके रास्ते में बैठ गए, गोपियाँ वहाँ से निकल गयीं लेकिन उन्होंने कृष्ण के चतुर्भुज रूप को नहीं देखा, वे तो उनके द्विभुज रूप से ही प्रेम करती थीं।

जीव गोस्वामी जी से मिलने के बाद मीरा के पास ललिता सखी आयीं और उन्होंने मीरा को दिव्य वृन्दावन के दर्शन कराये। उन्होंने स्वयं पद में गाया कि वृन्दावन की शोभा कैसी अद्भुत है?

आली म्हाने लागे वृंदावन नीको ।
घर-घर तुलसी ठाकुर सेवा, दरसण गोविन्द जी को ॥
निरमल नीर बहत जमुना को, भोजन दूध दही को ।
रतन सिंहासन आप विराजै, मुकुट धर्‌यो केकी को ॥
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥

'देखि कुंज-कुंज लाल प्यारी सुखपुंज भरी-
धरी उर माँझ आय देश वन गायो है।'

कुछ दिन वृन्दावन वास करने के पश्चात् वे वापस चित्तौड़ चली गयीं; क्योंकि वहाँ उनके प्रभाव से बहुत-सी सखियाँ-सहेलियाँ कृष्णानुरागिणी बन गयीं थीं। इसलिए वे वात्सल्य की दृष्टि से राजस्थान वापस लौट गयीं। जो भक्त होता है, वह भक्तों से प्यार करता है और उनके लिए वह अपने नियम, व्रत आदि सब कुछ छोड़ देता है। ऐसी उसमें करुणा होती है। यदि महापुरुष लोग करुणा न करें तो इस संसार में भक्ति का प्रचार-प्रसार कैसे हो सकता है? महापुरुषों में करुणा होती है, ऐसा करुणा करने वाला महापुरुष भगवान् को भी बड़ा प्रिय होता है और इतना प्रिय होता है कि उसी के लिए भगवान् अवतार लेते हैं।

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥

(भा. १०/२/३१)

वे महापुरुष वात्सल्य-दया की मूर्ति होते हैं। अनन्त उनमें दया होती है। वे स्वयं तो इस सुदुस्तर भवसागर से पार चले ही जाते हैं और वे जाने से पहले एक नाव छोड़ जाते हैं, जिससे कि संसार में भटकते हुए प्राणी भी उस पर चढ़कर भवसागर पार हो सकें। वह नाव क्या है? नाव है भगवान् के चरणों का आश्रय। सूर, तुलसी, कबीर, मीरा आदि भक्तों ने भगवान् का जो यश गाया, वह ये नाव छोड़ गए। उन्होंने पदों के माध्यम से भगवान् की शरणागति का मार्ग स्थापित किया। एक रास्ता दिखाया कि इस पर तुम चले आना, तुम्हें कृष्ण-प्राप्ति हो जायेगी। यह श्लोक पूर्णरूप से मीरा जी पर घटित होता है।

इसीलिये करुणा के कारण मीरा जी वापस राजस्थान चली गयीं किन्तु फिर भी राणा जी की बुद्धि नहीं सुधरी। मीरा के प्रति उसके अन्दर श्रद्धा पैदा नहीं हुयी। श्रद्धा एक ऐसी सम्पत्ति है कि वह सबको नहीं मिलती। अगर संतों-भक्तों के प्रति हमारी श्रद्धा ही हो जाए तो इतने से ही भक्ति मिल जायेगी।

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ।
वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥

(भा. ७/७/१७)

प्रह्लाद जी ने असुर बालकों को यही शिक्षा दी थी कि तुम भी हमारी तरह बन सकते हो, मूर्ख स्त्री भी हमारी तरह बन सकती है अगर उसके अन्दर श्रद्धा आ जाए।

'राना की मलीन मति देखि बसी द्वारावती
रति गिरिधारीलाल नित ही लड़ाइयै।'

राणा जी की वही मलिन बुद्धि रही, वह पुनः पूर्व की भाँति भजन में विघ्न करने लगे और उन्होंने संदेशा भेजा कि मीरा से कह दो 'महल में कोई साधु न आवै, हमारी राजपूतानी मर्यादा नष्ट होती है।' मीरा ने इसका बड़ा कठोर उत्तर दिया –

अब नहिं मानूँ राणा थारी मैं वर पायौ गिरिधारी ॥
मनि कपूर की एकै गति है कोऊ कहौ हजारी।
कंकर कंचन एकै गति है गुंज मिरच इक सारी ॥
अनड़ धणी सरणों लीन्हौं हाथ सुमिरणी धारी।
जोग लियो तब क्या दिलगीरी गुरु पाया निज भारी ॥
साधू संगति यह दिल राजी भई कुटुम सौं न्यारी।
क्रोड़ बार समझावो मोकौं चलूँगी बुद्धि हमारी ॥
रतन जटित कौ टोपा सिर पै हार कंठ कौ भारी।
चरन घुँघरू धमस पड़त है म्हें करा श्याम सौं यारी ॥
लाज सरम सबही मैं डारी यों तन चरण अघारी।
मीरा के प्रभु श्रीगिरिधर नागर झख मारो संसारी ॥

राणा जी ! जब मैंने जोग-वैराग्य ले लिया फिर किसको-किसको खुश करूँगी। जोग-वैराग्य जब लिया जाता है तो सारा संसार नाराज होता है, विरोध करते हैं सांसारिक लोग। कहते हैं कि अरे, क्या घर में बैठकरके भजन नहीं हो सकता है? हर आदमी समझदार बनकर ज्ञान देता है। इसीलिए जोग लेने वाले को किसी की परवाह नहीं करनी चाहिए, चाहे कोई खुश हो अथवा रूठे। भले ही सारा संसार रूठ जाए तो भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। एक ही चीज मिलती है या भक्ति कर लो, साधु-संग कर लो या कुटुम्ब को खुश कर लो। मीरा बोलीं – राणा जी ! तुम समझाने के लिए भेजते हो बड़े-बड़े ब्राह्मणों को, चाहे करोड़ों बार समझाओ पर मैं साधु-संग, नाचना-गाना नहीं छोड़ूँगी। किसी के समझाने से हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। जैसे संसारी आदमी, सांसारिक आसक्ति नहीं छोड़ता है,

जबकि वो मिथ्या है, तो भगवद्-भक्त अपनी सत्य आसक्ति कैसे छोड़ेगा? मेरी तो श्याम से यारी हो गयी है, अब क्यों मुझे समझाने का व्यर्थ परिश्रम करते हो।

इसके बाद जब उनकी भक्ति में ज्यादा बाधाएँ राणा जी डालने लगे तो उन्होंने एक पत्र लिखकर सुखपाल नाम के एक ब्राह्मण के हाथों तुलसीदासजी के पास भिजवाया।

पत्र में उन्होंने लिखा था –

स्वस्ति श्रीतुलसी गुण भूषण दूषण हरण गुसाँई।
बारहिं बार प्रनाम करौं अब हरौ शोक-समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बड़ाई।
साधु संग और भजन करत मोहिं देत क्लेश महाई॥
सो तौं अब छूटत नहिं क्यों हूँ लगी बरि आई।
बालपन में मीराँ कीन्हीं गिरधरलाल मिताई॥
मेंरे मात तात सम तुम हो हरि भक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबौ अब सो लिखिये समुझाई॥

हे गुसाईं जी महाराज! आप ही मेरा दुःख हरण कर सकते हो, मैं आपको प्रणाम करती हूँ। मेरे जितने भी स्वजन-सम्बन्धी हैं वे मुझे कष्ट देते हैं ;क्या कष्ट देते हैं? मैं साधुओं में नाचती हूँ, गिरिधर गोपाल का गुण गाती हूँ ;इसको देखकर वे मुझसे चिढ़ते हैं और मुझे कष्ट देते हैं, कष्ट यह है कि मेरे भक्ति-भजन में विघ्न डालते हैं परन्तु वे कुछ भी करते रहें, कितना भी कष्ट दें मेरी यारी गिरिधारी से नहीं छूट सकती है। मेरे तो भक्त-संत ही माता-पिता, भाई-बन्धु हैं। इसलिए हे गुसाईंजीमहाराज! मुझे क्या करना उचित होगा, आप पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दें। तुलसीदासजी ने पत्र पढ़ा और उनके प्रश्नों के उत्तर में यह पद लिखकर भेजा –

जाके प्रिय न राम–बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बंधु, भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो कंत ब्रज-बनितन्हि, भये मुद-मंगलकारी ॥
नाते नेह रामके मनियत, सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥

(तुलसीदासजी ने पत्र में बड़े कठोर शब्द लिखे) – उसको तुरन्त छोड़ दो, जो भक्ति में बाधा देता हो। कैसे छोड़ें? ऐसे छोड़ो जैसे करोड़ों जन्मों का तुम्हारा शत्रु हो। यही बात उन्होंने रामायण में भी लिखी है –

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ ॥

(रा.च.मा.अयो.१८५)

जो भक्ति में सहायता नहीं देता बल्कि बाधा देता है, चाहे वह सम्पत्ति है उसको छोड़ दो, उस घर को छोड़ दो, उन सुखों में आग लगा दो जिनसे भक्ति में बाधा आ रही हो, उन माँ-बाप, भाई-बन्धु को छोड़ दो जो बाधा देते हों।

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते
गृहान् प्रविष्टो यमपत्यमत्या ।
पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्री-
स्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥

(भा. ३/१/१३)

विदुर जी ने भी धृतराष्ट्र से यही कहा था कि अगर अपने कुल की कुशलता चाहते हो तो इस दुर्योधन को छोड़ दो क्योंकि ये भक्तिहीन है, भगवान् से द्वेष करता है। अगर तुम इसको नहीं छोड़ते हो, इसका पोषण करते हो तो यह तुम्हारे खानदान का सर्वनाश कर देगा।

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ ।
जहँ न राम पद पंकज भाऊ ॥

(रा.च.मा.अयो. २९१)

भरत जी ने भी कहा है कि जो भक्ति में सहायक नहीं होता है, उस सुख-सम्पत्ति, कर्म-धर्म आदि सबमें आग लग जाए। लेकिन मनुष्य मोहवश इनको नहीं छोड़ता है, इसलिए उसकी भक्ति नष्ट हो जाती है।

गोसाईं जी ने उदाहरण दिए – प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकशिपु को छोड़ा; विभीषण ने भाई-बन्धुओं को छोड़ा; भरत जी ने अपनी माँ कैकेई को छोड़ा ;राजा बलि ने अपने गुरू शुक्राचार्य को छोड़ा (गुरु भी यदि भक्ति में बाधक है, भगवान् की शरणागति से अलग करता है, संकीर्णता सिखाता है तो उसे भी छोड़ दो।), गोपियों ने अपने पतिओं को छोड़ दिया; (वह पति किस काम का जो भजन में बाधक है।) और इन सभी का मंगल हुआ। सम्बन्ध केवल उसी से रखना चाहिए, जिसके संग से भक्ति बढ़े। ऐसा सम्बन्ध किस काम का जिससे भक्ति नष्ट हो जाए। तुलसीदासजी ने लिखा कि शंका नहीं करो; जिसके संग से प्रभु के चरणों में प्रेम बढ़े वही सेव्य है, सुहृद है, पूज्य है, प्राणों से प्यारा है और बाकी सबको छोड़ दो। तुलसीदासजी ने एक और कवित्त लिखकर भेजा –

सो जननी सो पिता सोई भ्रात सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो ।
सोई सगो सो सखा सोई सेवक सो गुरु सो सुर साहब चेरो ॥
सो तुलसी प्रिय प्राण समान कहाँ लौं बनाय कहौं बहुतेरो ।
जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सों राम को होई सबेरो ॥

अर्थात् वही भाव इस कवित्त में आया है कि जिसके संग से कृष्ण-प्रेम, अपने इष्ट का प्रेम मिल जाए – वही माँ है, वही बाप है, वही भाई है, वही गुरू है, वही बेटा है, वही स्त्री है अर्थात् सब कुछ है। चैतन्यमहाप्रभु जी ने भी कहा है कि 'जेई कृष्णतत्त्ववेत्ता सेई गुरु हय' जो कृष्ण-प्रेम की शिक्षा दे, वही सच्चा गुरु है।

वह ब्राह्मण तुलसीदास जी के पत्र को लेकर मीरा जी के पास गया। पत्र को पढ़ते ही मीरा जी ने उसी समय सब कुछ छोड़ने का निश्चय कर लिया

और चल पड़ीं। यही सच्ची श्रद्धा की पहचान होती है कि उसी समय उस कार्य में लग जाना; एक क्षण की भी देर नहीं करना, ये श्रद्धा का लक्षण है। तो उसी समय वे अपना करताल, एकतारा और कींगरी लेकर वहाँ से द्वारिका के लिए चल पड़ीं। वृन्दावन इसलिए नहीं गयीं क्योंकि वृन्दावन निकट है बार-बार लोग मुझे ढूँढ़ने आयेंगे, अतः वे वृन्दावन न जाकर द्वारिका की ओर गयीं। रास्ते में रणछोर भगवान् से प्रार्थना करती जा रही हैं। श्री कृष्ण जब मथुरा में रणभूमि को छोड़कर द्वारिका भागे थे, तबसे उनका नाम रणछोर राय पड़ गया था। कथा इस प्रकार है कि मथुरा में श्री कृष्ण के ऊपर १८ अक्षौहिणी सेना लेकर जरासन्ध ने आक्रमण कर दिया, दूसरी ओर से कालयवन ने तीन करोड़ म्लेच्छों को लेकर मथुरा पर चढ़ाई कर दी, तब श्री कृष्ण मथुरा छोड़कर भागे। यह भगवान् ने भागने की लीला की। भगवान् ऐसी अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं जिन्हें समझना कठिन है। यह लीला प्रभु ने द्वारिका बसाने के लिए की, यदि भागने की लीला न करते तो द्वारिका लीला कैसे होती?

उद्धव जी ने कहा है कि बड़े-बड़े बुद्धिमान भी इन लीलाओं को देखकर चक्कर में आ जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है –

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥

(रा.च.मा.उत्तर. ७३)

निर्गुण उपासना बड़ी सरल है, इसमें संशय उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि वह कोई लीला नहीं करता है। निराकार सर्वव्यापी है, इसलिए कोई भ्रम नहीं है; लेकिन सगुण उपासना बड़ी कठिन है, क्योंकि सगुण-साकार रूप में भगवान् अनेकों लीलाएँ करते हैं, जो संशय में डाल देती हैं। जैसे भगवान् होकर जरासन्ध और कालयवन से डरकर भागे। क्यों? इसी तरह ब्रह्मा जी को मोह उत्पन्न हो गया था कि भगवान् होकर गँवार ग्वालों की जूठन खाता है। रामावतार में सती जी को मोह हो गया था कि भगवान् होकर प्राकृत मनुष्य की तरह स्त्री वियोग में रोता है। गरुड़जी को मोह हो गया था कि भगवान् होकर नागपाश में कैसे बँध गया?

इसलिए कृष्ण-लीला समझना बड़ा कठिन काम है, जो अनीह है, वह माखन चोरी करता है, छाछ के लिए नाचता है। लीला देखने से तो पेटू लगता है। जो अजन्मा है, वह जन्म लेता है। जो कालों का काल – महाकाल है, वह शत्रुओं के भय से मथुरा छोड़कर भागा, ये कैसा कालात्मा है, जो डर के कारण भाग रहा है। द्वारिका पहुँचकर श्रीकृष्ण ने १६, १०८ स्त्रियों से विवाह किये, जो आप्तकाम है, वह कहीं स्त्रियों के साथ रमण करता है।

इन सब विपरीत बातों को देखकर बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि भी भ्रम में पड़ जाती है।

अतः भगवान् को द्वारिका-लीला करनी थी इसलिए उन्होंने ऐसी लीला की। जब चित्तौड़ से मीरा चली हैं तो उन्होंने प्रार्थना करते हुए प्रभु से कहा – अरे, रणछोड़ राय ! तू द्वारिकाधीश बन गया है, मैं द्वारिका में आ रही हूँ, मुझको निवास देना वहाँ, मुझे अपने पास रख लेना।

राय श्री रणछोड़ दीजो द्वारिका में वास।
शंख चक्र गदा पद्म दरसैं मिटै जम की त्रास॥
सकल तीरथ गोमती के रहत नित्त निवास।
शंख झालर झाँझ बाजै सदा सुख की रास॥
तज्यौ देसहू वेसहू तजि तज्यौ राना राज।
दासि मीराँ सरन आवत तुम्हें अब सब लाज॥

मीरा ने प्रभु से प्रार्थना इसलिए की क्योंकि प्रभु की कृपा से ही उनके धाम में वास मिलता है, धामी की कृपा से ही धाम वास मिलता है। जैसे नागरीदास जी ने लिखा है कि ब्रज-बरसाना में वास कब मिलेगा, जब राधारानी की कृपा होगी।

'नागरिदास वास बरसानो, कुँवरि दिये सों पईये॥'

अतः मीरा जी ने प्रार्थना की कि मैं अपना देश-परदेश सब कुछ छोड़कर तेरे पास आ रही हूँ –

'दासी मीराँ सरन आवत तुम्हें अब सब लाज ॥'

भगवद्-शरण के लिए सम्पूर्ण त्याग करना पड़ता है, अगर थोड़ी-भी कहीं आसक्ति है तो शरणागति नहीं है। सूरदास जी ने भी कहा है कि शरण किसको कहते हैं –

जो हम भले बुरे तौ तेरे ।
सब तजि तुम सरनागत आयौ, दृढ़ करि चरन गहेरे ॥

अतः सब छोड़कर शरण में जाओ, यदि किसी वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ की याद आती है तो इसको शरणागति नहीं कहते हैं। मीरा जी अकेलीं चुपचाप सब कुछ छोड़कर चली गयीं यद्यपि उनकी बहुत-सी सखी-सहेलियाँ थीं। एक नियम है भक्तिशास्त्र का कि जो भक्त होता है, उसमें अपने-आप भक्ति से छः गुण आ जाते हैं। उसे अपने-आप ऐसे लोग मिल जाते हैं, जो उससे बहुत प्रेम करते हैं, यहाँ तक कि उसके लिए अपने प्राणों तक की चिन्ता नहीं करते हैं। यह भक्ति का प्रताप होता है। इसलिए मीरा जी की तमाम अनुरागिणी सखियाँ बन गयीं थीं, लेकिन वह अकेली ही चल पड़ीं।

जब मीराबाई चित्तौड़ छोड़कर गयी हैं, तब ग्रन्थकार लिखते हैं कि सारे राजस्थान में उपद्रव होने लग गए। यह एक बड़ी गम्भीर बात है। भगवान् का भक्त जिस स्थान पर रहता है, वह चाहे कुछ भी न करे, उसके रहने मात्र से ही अनेक उपद्रव, अनेक विपत्तियाँ टलती रहती हैं। जैसे लंका में विभीषण जी जब तक रहे, वहाँ एकदम सुख-समृद्धि बनी रही, जिस समय विभीषण जी ने लंका को छोड़ दिया, उसी समय वहाँ के लोगों की आयु, श्री सब चली गयी।

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं ।
आयूहीन भए सब तबहीं ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४२)

राम जी ने तो बाद में मारा रावण को, विभीषण के अपराध से सारे लंकावासी पहले ही मर गये थे।

साधु अवग्या तुरत भवानी ।
कर कल्यान अखिल कै हानी ॥

(रा.च.मा.सुन्दर. ४२)

उसी तरह मीरा ने जब चित्तौड़ छोड़ दिया तो उसी समय से चित्तौड़ में अनेक आपत्तियाँ आने लगीं क्योंकि भक्तापराध से अनेक व्याधियाँ आने लगती हैं और यदि कोई भक्तों में भाव रखना सीख ले तो अनन्त व्याधियाँ, अनन्त कष्ट उसी समय नष्ट हो जाते हैं। भक्तों की महिमा देवगुरु बृहस्पति जी ने इन्द्र को बताई ;जिस समय भरत जी चित्रकूट जा रहे थे रामजी से मिलने तो इन्द्र ने सोचा कि अगर इनके प्रेमवश रामजी अयोध्या लौट जाएँगे, तो रावण नहीं मरेगा, बना बनाया काम व्यर्थ हो जायेगा। इसलिए इन्द्र कुछ विघ्न डालने का प्रयत्न करने लगे, उस समय गुरु बृहस्पति जी ने समझाया – "अरे इन्द्र ! भरत जी भगवान् के भक्त हैं, तू भक्तापराध करेगा तो नष्ट हो जायेगा। संसार के सब अपराध माफ हो जाते हैं लेकिन भक्तापराध अक्षम्य होता है।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई ।
राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा ।
यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥
सुनु सुरेस उपदेसु हमारा ।
रामहि सेवकु परम पिआरा ॥
मानत सुखु सेवक सेवकाई ।
सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥

(रा.च.मा.अयो. २१८, २१९)

देवराज ! भगवान् का ऐसा स्वभाव है कि वे अपने अपराध पर रुष्ट नहीं होते हैं परन्तु उनके भक्त का अपराध करोगे तो तुम्हें उनकी क्रोधाग्नि में जलना पड़ेगा। जैसे महर्षि दुर्वासा जी को सुदर्शन चक्र की अग्नि में जलना पड़ा था। तुम भगवान् की चाहे कितनी भी पूजा करते हो, अगर उनके भक्तों

से बैर करोगे तो भगवान् तुमसे बैर मानेंगे और भक्तों की सेवा करोगे तो प्रसन्न होंगे। आखिर में बृहस्पति जी बोले कि तेरे पास तो एक कामधेनु गाय है, भगवान् के एक भक्त की सेवा सैकड़ों कामधेनु गायों से भी बढ़कर है।"

सीतापति सेवक सेवकाई ।
कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥

(रा.च.मा.अयो. २६६)

इसलिए मीरा के अपराध के कारण चित्तौड़ की सारी सुख-समृद्धि खत्म हो गयी।

प्रियादास जी लिखते हैं –' अति दुःख मानि 'अति कष्ट हुआ राणा जी को, 'अति' माने अनेकों प्रकार की विपत्तियाँ आ गयीं। भक्तापराध किसी को नहीं छोड़ता है – चाहे देवता हो, चाहे कोई भी हो। स्वयं भगवान् ने भागवत में कहा है कि अगर मेरी भुजा भी भक्तापराध करेगी तो मैं उसे भी काट डालूँगा।

'छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ।'

(भा. ३/१६/६)

भक्तापराध के कारण राणा जी को अनेक प्रकार के कष्ट मिले। तब उनको पता पड़ा कि मीरा भक्त थी, हमसे गलती हुयी है; लेकिन अब पछताने से क्या होगा? तब तो तुमने गिरिधारी लाल को फेंक दिया था। प्रभु की मूर्ति का मजाक उड़ाया था। अब जब कष्ट पड़ा, सारा राजस्थान दुःखमय हो गया, तब होश आया। यदि पहले ही राणा जी सच्चे भाव से सेवा करते तो उनको कृष्ण-प्राप्ति हो जाती; लेकिन मनुष्य अवसर खो देता है और फिर जीवन में दुबारा अवसर कभी नहीं आता है।

भगवान् कष्ट इसलिए देते हैं ताकि जीव की आँखें खुल जाएँ, लेकिन फिर भी आँखें नहीं खुलती हैं। भगवान् का सदा कृपामय स्वभाव है, माँ का प्यार भी कृपा है और चांटा भी कृपा है। माँ प्रेम भी करती है और जब बच्चा बात नहीं मानता है या गलत काम करता है तो चाँटा भी लगाती है। इसलिए भगवान् का जो दण्ड-विधान है, यह भी उनका प्यार ही है, लेकिन

जीव समझ नहीं पाता है। बल्कि ये और ज्यादा प्यार है, जब कष्ट मिलता है, तभी होश ठिकाने पर आते हैं। राणा जी को जब कष्ट मिला तब उन्हें अपनी गलतियों का एहसास हुआ। भक्तापराध भगवान् नहीं सह पाते हैं। भक्त का मतलब कोई ध्रुव, प्रहलाद जैसे भक्त नहीं, एक साधक भक्त भी भक्त है, उसका भी अपराध नहीं करना चाहिए। तुलसीदास जी ने लिखा है कि भगवान् का एक नाम लेने वाला भी भक्त है, उसमें भी भाव रखो।

तुलसी जाके मुखन सौं धोखेऊ निकसत राम ।
ताके पग की पगतरी मोरे तन को चाम ॥

ये है भक्तिमार्ग। हम लोगों में भक्ति नहीं है, इसलिए एक-दूसरे के दोष देखते हैं।

'लागी चटपटी भूप भक्ति कौ सरूप जानि-
अति दुख मानि विप्र श्रेणी लै पठाईयै ॥'

अतः राणा जी ने राज्य में उपद्रवों को देखकर बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मणों को बुलवाकर उपद्रवों का कारण पूछा – तो उन्होंने बताया कि यह सब भक्तापराध का दुष्परिणाम है। तब राणा जी को मीरा की भक्ति का बोध हुआ और उन्होंने बहुत से ब्राह्मणों को बुलवाकर, जिनका मीरा बहुत आदर करती थी। उनसे कहा –

“वेगि लैकै आवौ मोकौं प्रान दै जिवावौ”

मेरे प्राण निकलने वाले हैं, मुझे अत्यन्त कष्ट हो रहा है, मेरे प्राणों की रक्षा करो, मुझे प्राण दान दो, किसी तरह से मीरा को लौटाकर लाओ।

राजाज्ञा मानकर सभी ब्राह्मण चल दिये द्वारिका के लिए।

इससे पता पड़ता है कि कितना कष्ट होगा उन्हें। कर्म जब विपाक (फल) बनकर आता है, तब उसका कोई उपचार नहीं है, फिर तो वह फल भोगना ही पड़ता है। राणाजी ने कितना बड़ा अवसर खो दिया, यदि वे मीरा को न सताते, उसकी सेवा करते तो उनका अनन्तकाल का भवबन्धन कट जाता और कृष्ण-प्राप्ति हो जाती। लेकिन जीव का कैसा दुर्भाग्य है, भाव की जगह अभाव पैदा करता है। जिस दरवाजे से भगवान् मिलने वाले हैं,

उसको बंद कर देता है। भक्तों (संत-महापुरुषों) की सेवा एक दरवाजा है भगवान् से मिलने का। ऋषभ भगवान् ने स्वयं अपने पुत्रों से कहा है –

'महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।'

(भा. ५/५/२)

पुत्रों! महापुरुषों की सेवा एक दरवाजा है, उससे चले जाना मुक्त हो जाओगे; इसलिए जाओ, जहाँ महापुरुष मिलें, सब छोड़कर के उनकी सेवा करो और एक दूसरा दरवाजा है, जो सीधे नरक को ले जाता है, अनन्त अंधकार में ले जाता है। विषय-भोग, मल-मूत्र भोगते जाओ, कभी भी अन्धकार से नहीं निकल पाओगे। लेकिन दुर्भाग्य है जीव मुक्ति का द्वार छोड़ देता है और नरक का ही दरवाजा अपनाता है। इतने पर भी अपने को बड़ा बुद्धिमान समझता है कि हम बड़े ज्ञानी हैं, हम बड़े समझदार हैं।

"अहो गये द्वार धरनौ दै विनती सुनाइयै"

अतः ब्राह्मण लोग द्वारिका पहुँचे और उन्होंने मीरा जी से वापिस चित्तौड़ लौटने की प्रार्थना की; और कहा कि राणा जी को बड़ा पश्चाताप है, वे आपके बिना जी नहीं सकते हैं; और भी बहुत-सी बातें कहीं विस्तार से। मीरा जी ने साफ मना कर दिया, ऐंठ के कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि राणा जी ने साधुओं पर पाबन्दी लगा दी थी कि कोई भी साधु महल में नहीं जायेगा, इसलिए मीरा जी ने मना किया कि जहाँ भक्तों का सम्मान नहीं, मैं वहाँ कदापि नहीं रह सकती। ऐसे देश को धिक्कार है, जहाँ संत-भक्तों का सम्मान नहीं है।

जहाँ भक्तों का सम्मान नहीं है, विमुखों का बड़ा सम्मान है, राजा-रजवाड़े आते हैं और इनका मान-सम्मान करते हो, इसलिए हमें ये देश अच्छा नहीं लगता है।

नहिं भावै थारो देसड़ लोजी रंगरूड़ो ।
थारा देसा में राणा साधु नहीं छै, लोग बसे सब कूड़ो ॥

जिस देश में भक्त नहीं हैं, साधु-सन्त नहीं हैं। बड़े-बड़े राजा-रजवाड़े मुकुट लगाकरके चले आते हैं, ये फलाने राजा आ रहे हैं, ये फलाने कुँअर हैं, मीरा बोलीं – ये सब कूड़ा-करकट हैं।

इसलिए मीरा जी ने मना कर दिया कि अब मैं नहीं जाऊँगी। अब राणा जी पश्चाताप कर रहे हैं, उससे क्या होगा, पहले तो उन्होंने सारे देश को नास्तिक बना दिया। सभी लोग राजमहल में साधुओं से चिढ़ते हैं, उनका सम्मान नहीं करते हैं। इसलिए मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। वहाँ जाकर मैं करूँगी भी क्या? क्योंकि सारा परिवार हमको काल लगता है। काल इसलिए लगता है क्योंकि उनका भगवद्भक्तों में भाव ही नहीं है।

ब्राह्मणों ने बहुत प्रयत्न किया उन्हें वापिस ले चलने का लेकिन वे जाने के लिए तैयार नहीं हुई। तब ब्राह्मणों ने कहा – मीरा ! अच्छा अगर तुम नहीं जाओगी तो हम भी भूख-हड़ताल पर बैठ जाएँगे और यहीं प्राण छोड़ देंगे। हम लोग राणा जी से वादा करके आये हैं कि मीरा को लेकर ही वापस चित्तौड़ लौटेंगे। जब तक तुम यहाँ से नहीं चलोगी, ये सारा ब्राह्मण समाज न पानी पियेगा, न अन्न खाएगा। सभी बैठ गए धरना पर। मीराजी ने देखा कि ये तो बड़ा संकट आ गया। तब उन्होंने कहा –

अच्छा, मैं प्रभु से आज्ञा ले आऊँ; आखिरी दर्शन कर लूँ। ब्राह्मण बोले – ठीक है ! जाओ।

भक्त अपने मन से कुछ नहीं करते हैं **– 'उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन'** जैसी भगवान् प्रेरणा देते हैं, वैसा ही वे करते हैं, उनका भगवान् से इतना तादात्म्य होता है। उनके अन्दर विकार भी दिखाई पड़ता है तो भगवत्प्रेरित विकार होता है। भक्त के सभी कार्य भगवत्प्रेरित होते हैं। जैसे अर्जुन ने युद्ध किया तो भगवत्प्रेरित युद्ध किया।

'सुनि विदा होन गई राय रनछोर जू पै
छांड़ों राखौ हीन लीन भई नहीं पाइयै ॥'

अतः मीराजी मंदिर में गयी और प्रभु से बोलीं – या तो तुम मुझे छोड़ दो, त्याग दो या मुझे रख लो अपनी शरण में अर्थात् मुझे जाना पड़ा तो इसके माने तुमने मुझे त्याग दिया है। उस समय उन्होंने तीन पद गाये –

हरि तुम हरहु जनकी पीर ।
द्रौपदी की लाज राखी तब बढ़ायौ चीर ॥

भक्त कारण रूप नरहरि धर्‍यौ आप सरीर।
हिरण्यकश्यप मारि लीन्हों धर्‍यौ नाहिन धीर॥
बूड़तो गजराज राख्यौ कियौ बाहिर नीर।
दासि मीराँ लाल गिरिधर चरन कमलनि सीर॥

सजन सुधि ज्यूँ जाणि, ज्यूँ लीजै हो।
तुम बिन मोरे और न कोई, कृपा रावरी कीजै हो॥
दिन नहीं भूख रैण नहीं निदरा, यूं तन पल-पल छीजै हो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीजै हो॥

अब तो निभाया बनेगी, बाँह गहे की लाज।
समरथ सरण तुम्हारी साइयाँ, सर्व सुधारण काज॥
भव सागर संसार अपर बल, जा में तुम हो जहाज।
निरधारा आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज॥
जुग-जुग भीर हरी भगतन की, दीनी मोच्छ समाज।
मीराँ सरण गही चरणन की, पैज रखो महाराज॥

इन पदों में उन्होंने अपनी व्यथा सुनाई प्रभु को। हे मेरे स्वामी! अब मेरी लज्जा तो आपके ही हाथों में है, आपने हर युगों में अपने भक्तों (ध्रुव, प्रहलाद, द्रौपदी... आदि) की लाज रखी है, अतः मेरी भी लाज रखो। अगर मैं इनके साथ चित्तौड़ नहीं जाती हूँ, तो ये ब्राह्मण मर जायेंगे; और मैं दुबारा जाना नहीं चाहती हूँ, अब आप ही मेरे व्रत का निर्वाह करो कि ब्राह्मण भी न मरें और मेरा व्रत भी न टूटे।

मीरा जी के सर्वसमर्पण के भावों को श्रीरणछोड़ लाल जी ने ग्रहण किया और उनकी लज्जा को रख लिया। मीराजी ने प्रभु के श्री विग्रह से आलिंगन किया और भगवान् ने उन्हें अपने श्रीअंग में लीन कर लिया।

नाचत घुँघरू बाँध कै, गावत लै करताल ।
देखत ही हरि सों मिली, तृन सम तजि संसार ॥
मीरा को निज लीन्ह कियो, नागर नन्द किशोर ।
जग प्रतीति हित नाथ मुख, रह्यो चूनरी छोर ॥

बहुत देर हो गयी ब्राह्मणों को इन्तजार करते-करते परन्तु मन्दिर के पट नहीं खुले; तब उन लोगों ने जिस किसी तरह किवाड़ खोले और अन्दर जाकर देखा तो वहाँ मन्दिर में मीरा नहीं है। सब जगह खोजा परन्तु कहीं नहीं है, तब उनकी दृष्टि ठाकुर जी के मुखमण्डल पर पड़ी, ठाकुरजी के मुख से मीरा की चूनरी लटक रही थी, सब समझ गए – "ओहो ! मीरा तो लीन हो गयी है।"

जय मीरा के गिरिधर नागर, जय तुलसी के सीताराम ।
जय नरसी के साँवरिया, जय सूरदास के राधेश्याम ॥

मीराबाई की जय ! गिरिधारीलाल की जय !!

श्री बाबा महाराज के अतिप्रिय मीरा जी के पद

(१)

श्याम पिया मोहि रंग दै चुनरिया ॥
ऐसी रंग दे रंग नाहिं छूटे,
धोबिया जो धोवे सारी उमरिया ।
जो न रंगोगे तो बैठी रहूँगी,
बैठे बिता दूँगी सारी उमरिया ॥
लाल न रंगाऊँ हरी न रँगाऊँ,
अपने ही रंग में रंग दे चुनरिया ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर,
स्याम पिया सो मेरी लागी नजरिया ॥

(२)

म्हारे जनम मरण रा साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती ।
थाँ देख्यां बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती ।
ऊँचे चढ़-चढ़ पंथ निहारुँ, रोय-रोय अँखियाँ राती ॥
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती ।
दोउ कर जोड़यां अजर करुँ छूं, सुण लीज्यो मेरी बाती ॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी ।
सतगुरु हाथ धर्यो सिर ऊपर, अँकुस दै समझाती ॥
पल पल पिव को रूप निहारुं, निरख-निरख सुखपाती ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित राती ॥

(३)

मैं हरि बिन क्यूँ ज्यूँ री माई ।
पिव कारण बौरी भई, ज्यूँ काठहि घुन खाई ।
ओखद मूल न सँचरै, मोहिं लाग्यो बौराई ॥
कमठ दादुर बसत जल में, जलहि ते उपजाई ।
मीन जल के बिछुरे तन, तलफि कै मर जाई ॥

पिय ढूँढ़न बन-बन गई, कहूँ मुरली धुनि पाई ।
'मीरा' के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुखदाई ॥

(४)

मेरो मन लागो हरि जू सूँ मैं अब न रहूँगी अटकी ।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हों ज्ञान की गुटकी ।
चोट लगी निज नाम हरि की, म्हारे हिबड़े खटकी ॥
माणिक मोती परत न पहिरुँ, मैं कब की नटकी ।
गेणो तो म्हारे माला दोबड़ी, और चन्दन की कुटकी ॥
राज कुल की लाज गँवाई, साधाँ के संग भटकी ।
नित उठ हरि जू के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे-दे चुटकी ॥
भाग खुल्ये म्हारो साध संगत सूँ, सांवरिया की बटकी ।
जेठ बहु को काण न मानूँ, घूँघट पड़ गई पटकी ॥
परम गुरां के सरण रहस्याँ, परणाम करां लुटकी ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरन सूं गुटकी ॥

(५)

मेरे मन राम नाम बसी ।
तेरे कारण श्याम सुन्दर सकल लोक हँसी ।
कोई कहै मीरा भई बौरी, कोई कहै कुल नासी ।
कोई कहै मीरा दीप आग री, नाम पिया सूँ रसी ।
खांड धार भक्ति की न्यारी, काटि है जम की फाँसी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर सब्द सरोवर धँसी ॥

(६)

हेली सुरत सुहागिनी नार सुरत मेरी स्याम सों लगि ।
लगनी लहंगा पहर सुहागिन बीती जाय बहार ॥
धन योवन दिन चार का है जात न लागे बार ।
बर बराँला राम जी म्हारो चूड़ो अमर हो जाए ॥
राम नाम का चूड़लो हो निरगुण सुरमो सार ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणा की मैं दास ॥

(७)

म्हारे नैणां आगे रहीजो जी श्याम गोविन्द।
दास कबीर घर बालद जो लाया, नामदेव का छान छवंद ।
दास धना को खेत निपजायो, गज को टेर सुनंद ॥
भीलणी का बेर सुदामा का तंडुल, भर-भर मूंठी बुकंद ।
कर्मा की खिचरी आरोग्यो होई परसण पावन्द ॥
सहस गोप बिच श्याम बिराजे ज्यों तारा बिच चंद ।
सब संतो का काज सुधारयों 'मीरा' सों दूर रहन्द ॥

(८)

सजन सुधि ज्यूं जाणि ज्यूं लीजै हो ।
तुम बिन मोरे और न कोई कृपा रावरी कीजै हो ॥
दिन नहीं भूख रैण नहीं निदरा यूं तन पल पल छीजै हो ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर मिल बिछुड़न मत कीजै हो ॥

(९)

नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय ।
रोम-रोम नख सिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाय ॥
मैं ठाढ़ी गृह आपणे रे, मोहन निकसे आय ।
सारंग ओट तजै कुल अंकुस, बदन दिय मुस्काय ॥
लोग कुटुम्बी बरज बरजहिं, बतियाँ कहत बनाय ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, पर हथ गये बिकाय ॥
भलि कहौ कोई बुरी कहौ मैं, सब लई सीस चढ़ाय ।
'मीरा' प्रभु गिरिधरन लाल बिन, पल भर रह्यो न जाय ॥

(१०)

नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात किस विधि होय प्रभात ।
चमक उठी सपने सुध भूली, चन्द्रकला न सुहात ।
तलफ-तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ ॥
भइ हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात ।
'मीरा' कहै बीती सोई जानै, मरण जीवण उन हाथ ॥

(११)

नहिं ऐसो जनम बारम्बार ।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटै मानुषा अवतार ॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल जात न लागे बार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटै नहीं पुनि डार ॥
भौ सागर अति जोर कहिए अनंत ऊंची धार ।
राम नाम का बांध बेड़ा उतर परले पार ॥
ज्ञान चौसर मण्डी चौहटे सुरन पासा सार ।
या दुनिया में रची बाजी जीत भावैं हार ॥
साधु संत महन्त ज्ञानी चलत करत पुकार ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर जिवणां दिन चार ॥

(१२)

चालां वाही देस प्रीतम पावां चालां वाही देस ।
कहा कसूँभी सारी रंगावां, कहो तो भगवां भेस ॥
कहा तो मोतियन मांग भरावां, कहो छिटकावां केस ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, सुणज्यो बिड़द नरेस ॥

(१३)

कभी म्हाँरी गली आव रे,
जिया की तपन बुझाव रे, म्हाँरे मोहना प्यारे ।
तेरे साँवले बदन पर, कई कोट काम वारे ।
तेरा खूबी के दरस पै, नैना तरसत म्हाँरे ॥
घायल फिरूँ तड़पति हिरणि, पीड़ जाणै नहि कोई ।
जिस लागी पीड़ प्रेम की, जिन लाई जाने सोई ॥
जैसे जल के सोखे, मीन क्या जिवें बिचारे ।
कृपा कीजै दरस दीजै, 'मीरा' नन्द के दुलारे ॥

(१४)

मैंने हरि सूं कीनी यारी ।
म्हारे घर के पिछवारे झाड़ में बैठा कुंज बिहारी ।

तन मन की हम बाता करता रैन गवाई सारी ॥
हूं जमुना जल भरन गई लहरन की छबि भारी ।
संग सहेली म्हारी दूर निकस गई भेंटा श्री बनवारी ॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर हरि चरणां बलिहारी ।
बांह गहे की लाज निभाया गोवर्धन गिरधारी ॥

(१५)

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई ॥
छांड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई ।
संतन ढिंग बैठ-बैठ लोक लाज खोई ॥
चूनरी के किये टूक ओढ़ लीनी लोई ।
मोती मूंगे उतार वनमाला पोई ॥
अंसुबन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेलि फैलि गई आनंद फल होई ॥
दूध की मथनियां बड़े प्रेम ते बिलोई ।
माखन जब काढ़ि लियो छाछ पिये कोई ॥
भगत देखि राजी हुई जगत देख रोई ।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर तारो अब मोई ॥

(१६)

करमन की गति न्यारी, कैसे पतियां लिखूं गिरिधारी ।
नागर बेल फूल बिन तरसै, फूला लूम हजारी ॥
उज्जवल पंख दिये बगुला को कोयल केहि बिधि कारी ।
मूरख राजा राज करत है, पण्डित फिरै भिखारी ॥
पतिव्रता नारि पुत्र बिन तरसै, फूहर जनि जनि हारी ।
बड़े नैन दीने मिरगा को, वन-वन फिरत उघारी ॥
और नदी को मीठो पानी, समुंदर कीनी खारी ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरनन बलिहारी ॥

(१७)

किसने सिखाया श्याम तुम्हें मीठा बोलना ।
मीठी तुम्हारी बाणी चितवन का चोरना ॥
जामा तेरो लाख का है, पटका करोरना ।
शीश मुकुट लकुट हाथ, लटका मरोरना ॥
मोहन सों प्रीति करके कहो का सों बोलना ।
'मीरा' की हृदय गांठ तुम्ही आके खोलना ॥

(१८)

तोसो लाग्यो नेह रे प्यारे नागर नंद कुमार ।
मुरली मेरा मन हर्‍यो बिसर्‍यो घर व्यौहार ॥
जब ते श्रवननि धुनि परी, घर अंगणा न सुहाय ।
पारधि ज्यूं चूकै नहीं, मृगी बेध दइ आय ॥
पानी पीर न जानइ ज्यौं, मीन तड़फ मरि जाय ।
रसिक मधुप के मरम को, नहीं समुझत कमल सुभाय ॥
दीपक दया नहीं, उड़ि-उड़ि मरत पतंग ।
'मीरा' प्रभु गिरिधर मिले, जैसे पाणी मिलि गयौ रंग ॥

(१९)

प्यारे दरसन दीज्यौ आय, तुम बिन रह्यो न जाय ।
जल बिनु कमल चंद बिनु रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिनु सजनी ।
आकुल व्याकुल फिरूँ रैन दिन, बिरह करैजो खाय ।
दिवस न भूख नींद नहीं रैना, मुख सूं कथत न आवै बैना ।
कहा कहूं कछु कहत न आवै, मिलकर तपन बुझाय ।
क्यूं तरसावौ अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी ।
'मीरा' दासी जनम-जनम की, परी तिहारै पांय ॥

(२०)

तुम बिन मेरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ।
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, कुण्डल की छबि न्यारी ।
वृंदावन में धेनु चरावे, बंसी में बुलावे राधा प्यारी ।

मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी ।
'मीरा' दासी जनम-जनम की, आय मिलो गिरिधारी ॥

(२१)

स्याम म्हाने चाकर राखो जी, गिरिधारी लाल चाकर राखो जी ।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ नित उठ दरसण पासूँ ।
वृंदावन की कुंज गलिन में तेरी लीला गासूँ ।
चाकरी में दरसण पाऊँ सुमिरण पाऊँ खरची ।
भाव भगति जागीरी पाऊँ तीनो बातां सरसी ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै गल बैजन्ती माला ।
वृंदावन में धेनु चरावै मोहन मुरली वाला ।
हरे-हरे नित बाग लगाऊँ, बिच-बिच राखूँ क्यारी ।
साँवरिया के दरसण पाऊँ पहर कसूंभी सारी ।
जोगी आया जोग करण को तप करणे सन्यासी ।
हरि भजन कूँ साधु आया वृंदावन के वासी ।
'मीरा' के प्रभु गहिर गंभीरा, सदा रहो जी धीरा ।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हें प्रेम नदी के तीरा ॥

(२२)

बंसीवारा आज्यो म्हारे देस, थारी साँवरी सुरत ब्हालो बेस ।
आऊँ-आऊँ कर गया साँवरा, कर कौल अनेक ।
गणता-गणता घस गइ म्हारी आंगुलियाँ री रेख ॥
मैं बैरागिण आदि की जी, थारे म्हारे कद को सनेह ।
बिन पाणी बिन साबण साँवरा, होय गई धोय सफेद ॥
जोगण होय जंगल सब हेरूँ, तेरा नाम न पाया भेस ।
तेरी सुरत के कारण मैं धर लिया भगवाँ भेस ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूँघर वाला केस ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर मिलियाँ दूनो बढ़ै सनेस ॥

(२३)

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कद की खड़ी ।
साजनिया दुसमण होय बैठ्या, सबने लगूँ कड़ी ।
तुम बिन साजन कोई नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद अड़ी ।
दिन नहिं चैन रैण नहिं निंदरा सूखूँ खड़ी-खड़ी ।
बाण बिरह का लग्यो हिये में, भूलूँ न एक घड़ी ।
पत्थर की तो अहिल्या तारी, वन के बीच पड़ी ।
कहा बोझ 'मीरा' में कहिये, सौ पर एक घड़ी ॥

(२४)

मैं जाण्यों नहिं (हाय सखी री) प्रभु को मिलण कैसे होय री ।
आये मेरे सजना फिर गये अँगना, मैं अभागण रही सोय री ।
फारुँगी चीर करुँ गल कंथा, रहूँगी वैरागण होय री ।
चुरियाँ फोरुँ मांग बखेरुँ, कजरा मैं डारुँ धोय री ।
निसिवासर मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल मोय री ।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनासी, मिल बिछुड़ो मत कोय री ॥

(२५)

आली री मेरे नैणां बाण पड़ी।
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी ।
कबकी ठाड़ी पंथ निहारुँ, अपने भवन खड़ी ।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी ।
'मीरा' गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी ॥

'मीरा' को गुरु मिलिया 'रैदास'

चाहे प्रागैतिहासिक स्वरूप हो अथवा पौराणिक स्वरूप, भारत का इतिहास प्रारम्भ से ही बहुत गौरवपूर्ण रहा है किन्तु संकीर्ण विचारधाराओं ने इसे धूमिल करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

राष्ट्र से, धर्म से प्रेम करने की दुहाई देने वालो ! हमने अपनी नासमझी में बहुत कुछ गँवा दिया किन्तु अब यह धारण कर लें कि भारत केवल एक भूमि ही नहीं है प्रत्युत इस भूमि पर जिस महान संस्कृति का उद्भव व पल्लवन हुआ है, वही अधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसकी रक्षा प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तव्य है।

हम उन परिस्थितियों को जन्म न दें जो देश का, समाज का एवं स्वयं का विभाजन कराती हों। कटु होते हुए भी सत्य तो यह है कि विधर्मियों के द्वारा हमारा उतना विनाश नहीं हुआ, जितना कि स्वधर्मियों के द्वारा हुआ। आज तक इस देश के संकीर्ण विचारकों के द्वारा जो देश व संस्कृति का संकुचन हुआ और अनवरत् हो रहा है, वह तो विधर्मी आक्रान्ताओं के द्वारा लाखों वर्षों तक यहाँ लूटपाट, तोड़-फोड़, कत्लेआम किये जाने पर भी नहीं हो सका था।

खेद है कि आज अपने ही धर्मग्रन्थों की भावना को व महापुरुषों की महिमा को यथार्थ रूप से न समझने वाले मनमुखी ज्ञानाभिमानी अज्ञानी लोग संकीर्णता का ध्वज हाथ में लिये अपने ही धर्म को खण्ड-खण्ड करने को तैयार खड़े हैं।

कुछ संकीर्ण विचारधारा के लोगों के मन में यह सन्देह उत्पन्न होता है कि संत श्रीरैदास जी चित्तौड़ की महारानी परम कृष्ण-भक्ता श्रीमीराबाई जी के गुरु नहीं थे, सन्देहोत्पत्ति के कई कारण हैं। यथा –

१. श्रीरैदास जी हीन (चमार) जाति के थे और श्रीमीराजी क्षत्राणी होने के साथ चित्तौड़ की महारानी भी थीं तो एक महारानी उनकी शिष्या कैसे हो सकती है?

२. श्रीमीरा जी ने जिन पदों में श्रीरैदास जी को अपना गुरु बताया है, उनको कुछ विद्वानों द्वारा प्रक्षिप्त माननाl

३. ऐतिहासिक दृष्टि से श्रीरैदास जी और श्रीमीराबाई के समकालीन होने का ठीक-ठीक काल निर्णय न हो पाना।

४. कुछ विद्वानों के मत में श्रीरैदास जी और श्रीमीराबाई जी की उपासना पद्धति में भिन्नता होना।

शंका-समाधान

संत श्रीरैदास जी की हीन जाति को लेकर जिनके मन में शंका होती है इसका मतलब वे एकदम भक्तिशून्य हैं, भक्ति की गन्ध भी नहीं मिली उन्हेंl अरे, ये भक्तिमार्ग वह मार्ग है जिसका अवलम्बन लेने से एक चाण्डाल भी सृष्टि कर्ता ब्रह्मा से भी ऊपर पहुँच जाता है। भगवान् श्रीराम ने कहा है –

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥

जातिवाद के आधार पर भक्त में अभाव करना जघन्य अपराध है। पद्मपुराण में कहा गया है –

अर्चावतारोपादानम् वैष्णवोत्पत्तिचिन्तनम्।
मातृयोनिपरीक्षां च तुल्यमाहुर्मनीषिणः ॥

‘अर्चाविग्रह की उत्पत्ति के उपादान कारण के सम्बन्ध में सोचना कि यह किस धातु से निर्मित है, वैष्णवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करना और मातृयोनि की परीक्षा करना – ये तीनों एक समान महापाप हैं।’ अगर भक्ति में जातिवाद को लेकर चलोगे तो भक्ति-पंथ ही नष्ट हो जायेगा, यदि ऐसा होता तो श्रीश्वपच वाल्मीकि जी, शबरी जी, विदुर जी, गुह निषाद

जी, नामदेव जी, रैदास जी, कबीरदास जी, धन्ना जाट जी, सेन नाई जी, सदन कसाई जी, त्रिलोकी सुनार जी आदि भक्तों की कथायें शास्त्रों में सादर नहीं गाई जातीं । जातिवाद भक्तिपथ में नहीं चलता है, यह भक्तिमार्ग है यहाँ भक्ति के बिना सब जाति-पाँति महत्वहीन है । श्रीसूरदास जी ने कहा कि इस मार्ग में तो –

स्वपचहु स्रेष्ठ होत पद सेवत,
बिनु गोपाल द्विज जनम न भावै ॥

तुलसी भगत सुपच भलो, जपै रैन दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥

ब्रज के महान रसिक संत श्रीहरिराम व्यास जी के वचन –

व्यास कुलीननि कोटि मिलि, पण्डित लाख पचीस ।
श्वपच भक्त रैदास पर, तुलै न तिन को शीश ॥
व्यास बड़ाई छोड़ि कै, हरि चरणनि चित जोरि ।
एक भक्त रैदास पर, बारौं बांभन कोरि ॥

अथवा

"भक्ति में कहा जनेऊ जाति ।"
इतनौ है सब कुटुंब हमारौ ।
सैन धना अरु नामा पीपा और कबीर रैदास चमारौ ॥

श्रीहरिराम व्यास जी ने स्वयं श्रीरैदास जी की प्रशंसा की । यह इसलिए बताया जा रहा है कि व्यास जी जैसा महान ज्ञानी पण्डित कौन हो सकता है, जिन्होंने शास्त्रार्थ में सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त की थी । अनन्तर भगवान् शंकर के द्वारा बोध कराने पर व्यास जी ने ब्रज में आकर श्रीयुगल सरकार की उपासना की, जिन्हें विशाखा सखी का अवतार भी

माना जाता है। वृन्दावन के रसिकत्रयी में जिनका नाम आता है। वे स्वयं कह रहे हैं कि भक्त रैदास जी के ऊपर करोड़ों ब्राह्मण न्यौछावर हैं, ऐसा उन्होंने इसलिए कहा क्योंकि वे भक्तितत्त्व के सच्चे ज्ञाता थे। श्रीमद्भागवत में भी श्रीनृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए श्री प्रह्लाद जी कहते हैं –

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(श्रीमद्भागवत ७/९/१०)

हे प्रभो ! द्वादश गुणसम्पन्न चाहे ब्राह्मण ही क्यों न हो किन्तु यदि वह भगवत्पादपद्मों से विमुख है तो उससे भक्तियुक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपना मन, वचन (वाणी), कर्म (शरीर की चेष्टाएँ), अर्थ (धन), प्राण और शरीर भगवान् को समर्पित कर दिया है। सर्व समर्पण से वह चाण्डाल सकुल पवित्र हो जाता है किन्तु वह जात्याभिमानी ब्राह्मण स्वयं को भी पवित्र नहीं कर पाता है।

श्रीमतंगमुनि ने भी शबरी के समक्ष यही कहा था –

'कैऊ कोटि विप्रताई यापै वारि डारिये ।'

(श्रीप्रियादास जी कृत 'भक्तिरसबोधिनी', कवित्त ३३)

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।

वृहन्नारदीय पुराण में यही कहा गया –

विष्णुभक्ति विहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधिकः ॥

'भक्त चाण्डाल भक्तिहीन ब्राह्मण से अधिक श्रेष्ठ है और वह भक्तिहीन ब्राह्मण चाण्डाल से भी अधम है।'

स्वयं मीरा जी भी भक्ति के आगे जाति-पाँति, कुल मर्यादाओं को कुछ नहीं समझती थीं। स्वयं उनके पदों से यह प्रमाणित होता है, वह नित्य सत्संग-कीर्तन करने नीच (हीन) जाति के लोगों के घरों में भी चली जाती थीं। एक पद में मीराजी की ननद ऊदा उनसे कहती है –

अब मीरा मान लीज्यो म्हारी, हो जी थाने सखियाँ बरजे सारी।
राणा बरजै राणी बरजै, बरजै सब परिवारी॥
साधन के ढिंग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी।
नित प्रति उठि नीच घर जावो, कुल कूँ लगाबो गारी॥

मीराबाई ने स्वयं राणा जी से कहा –

राणाजी हो जाति रो कारण म्हारे को नहीं,
लागो म्हारो हरि भगताँ सूँ हेत॥
बन में हुती स्योरी भीलणी, ज्याँ का आरोग्या ठाकुर बेर।
ऊँच नींच हरि नां गिणैं, ऐसी म्हारा हरिभगतां री कोर॥

इसी प्रकार उन्होंने अनेकों पदों में कहा है कि मैंने लोकमर्यादा, जातिमर्यादा सब छोड़ दिया, ये सब भक्ति के अन्तराय (विघ्न) हैं –

श्री गिरिधर आगे नाचूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूँगी॥

इस तरह सैकड़ों पदों में उन्होंने लोक-लाज, जाति-पाँति परित्याग करने की बात कही है।

कोई यदि शंका करे कि लोक-लज्जा को तिलांजलि देकर ये तो उन्होंने अमर्यादित कार्य किया, लज्जा तो स्त्रियों का भूषण है किन्तु वस्तुतः उनका यह कार्य शास्त्र विरुद्ध नहीं, अपितु शास्त्र समर्थित ही था। कृष्ण-प्रेम में लोक-लज्जा भी एक बंधन है, उसको बिना तोड़े कोई सच्चा

श्रीकृष्ण-प्रेमी नहीं बन सकता । लोक-लज्जा का अतिक्रमण यदि भक्ति, भगवत्प्रेम को छोड़कर अन्य हेतु से किया जाय तो वह अवश्य ही अमर्यादित कार्य है किन्तु शुद्ध भक्ति में तो महापुरुषों ने कहा है –

चाखा चाहे प्रेम रस राखा चाहे लाज ।
नारायण प्रेमी नहीं बातन को महाराज ॥

इन लोक-लज्जा की जंजीरों को तोड़ने के बाद ही प्रेम-रस की प्राप्ति हो पाती है।

ब्रजगोपियाँ भी कहती थीं –

लाज के ऊपर गाज परै ब्रजराज मिलैं सोई काज करो री ।

श्रीतुलसीदास जी के वचन –

प्रीति तहाँ परदा नहीं, परदा तहाँ न प्रीति ।
प्रीति करै परदा करै, तुलसी यह अनरीति ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने लज्जा रूपी आवरण को हटाने के लिए ही गोपियों के चीर चुराए थे।

अस्तु मीराबाई जी ने जो लोकलज्जा का परित्याग किया, यह उनका कृत्य भक्तियुक्त था, इसीलिए तो बड़े-बड़े महापुरुषों ने उनके इस कार्य की सराहना की है, जैसे श्रीनाभाजी ने भक्तमाल में उनके लिये ऐसे सम्मानजनक शब्द लिखे कि उन्हें कलियुग में प्रकट साक्षात् गोपिकावतार बताया है।

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी! आप हमारे ऊपर दया करिये। इस जगत् में हमसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है, अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से हमारे ऊपर भी तनिक दया-दृष्टि कीजिये।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्यो ॥

हमारे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आयी हैं। हम अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलते आये हैं। इस लोक में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है। हे दीनों का पालन करने वाली श्रीराधे! कृपा करके आप हमारे हृदय में निवास कीजिये। हम आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा करता हूँ। आप हमारी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए। हे श्यामा जू! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा, जब आप हमारे ऊपर करुणा करेंगीं; इसी आशा के बल पर हमने आपके द्वार पर (श्रीधाम में) डेरा जमा लिया है।

ब्रजधाम, जहाँ अनन्तानन्त सृष्टि के रचयिता, पालनकर्ता व संहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण भी अपनी भगवत्ता छोड़कर ब्रज-गोपियों के पीछे याचक बने दौड़ते हैं, उनके इशारे पर नाचते हैं और उनके कहने पर हर छोटा से छोटा कार्य करने के लिए तत्पर हो जाते हैं और इसी ब्रज में अनेक दिव्य लीलाएँ खेलते हैं, इन अद्भुत लीलाओं का आस्वादन हजारों वर्षों से न जाने कितने भक्त कर रहे हैं। ये अद्भुत व सुन्दर लीलाएँ ब्रज की सांस्कृतिक धरोहर हैं परन्तु दुर्भाग्यवश कलियुग के बढ़ते प्रभाव से यह बहुमूल्य निधि लुप्त होती जा रही है। इसी कारणवश स्थापना हुई 'श्री मान मंदिर कला प्रकाशिनी' की। जिसके माध्यम से प्रतिवर्ष रंगीली होली व राधाष्टमी के अलौकिक पर्व के उपलक्ष्य में भव्य नाटिका का आयोजन किया जाता है, जो केवल नाटिका ही नहीं बल्कि भक्तों द्वारा पूर्ण समर्पित भाव से की गई आराधना है, जिसमें मान मंदिर परिकर के सभी भक्त पूर्ण निष्ठा से हर स्तर पर अपनी सेवा देते हैं। इसी रंगमंच पर सन् २०१४-१५ में 'मीरा-नाटिका' की प्रस्तुति की गयी, जिसका रसास्वादन आप लोग भी इस (website) पर कर सकते हैं।

https://www.youtube.com/watch? v=qxUXAi-clZc

ब्रजोपासना में जैसा कि नृत्यगान का महत्व सर्वोपरि है। इसी भाव से मीराबाई नाच-नाचकर गिरिधर को रिझाती थीं।‘ पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे’ – पूज्य बाबा महाराज भी पिछले ६४ वर्षों से इसी उपासना पद्धति से नृत्य-गान करके अपने आराध्य को रिझाते आ रहे हैं। उन (पूज्य बाबा महाराज) को मीरा जी के पद इतने प्रिय थे कि वे शैशवकाल से ही उनके पदों का गान करते आ रहे हैं और आज भी मीरा के उन प्रेम-गीतों को गाते हैं। पूज्य बाबा श्री द्वारा मीरा जी के पदों का गायन आप इस (website) पर सुन सकते हैं।

http://maanmandir.org/night-bhajans-2010-part02/

प्रेम-दीवानी मीरा जी लोकलाज और कुल की श्रृंखलाओं को त्यागकर, निरंकुश तथा अतिनिर्भय होकर जिस प्रकार अपने गिरिधारीलाल को नित्य ही नृत्यगान युक्त रसोमयी दिव्याराधना के द्वारा रिझाया करती थीं, उन्हीं के पद्चिन्हों का अनुसरण करते हुए आज भी मानमंदिर की दिव्य आराधिकाएँ मीरा जी के ही ज्वलन्त जीवन को आत्मसात करने वाले रसिक महापुरुष परम विरक्त संत श्री बाबा महाराज के दैनिक संध्याकालीन गाये जाने वाले मीरा, सूर, तुलसी.... आदि भक्तों के पदों में भावविभोर होकर एक घण्टे से भी अधिक समय तक नृत्य के द्वारा रासेश्वर श्रीश्यामसुन्दर को रिझाती हैं। इन आराधिकाओं को न तो मान-सम्मान, निन्दा और अपमान आदि की चिन्ता है और न ही जीवनोपयोगी भोजन-आच्छादान की; पूर्णतया निर्द्वन्द्व होकर राधामाधव का गुणगान करते हुए आनन्द से नृत्याराधना द्वारा प्रतिदिन ही ये अपने आराध्य को रिझाने में मग्न हैं। इनकी इस नृत्यगानमयी आराधना को नित्य ही मानमंदिर की इस (Website : www.maanmandir.org) के द्वारा प्राप्तकर आप अपने जीवन को परमधन्य बनाने का प्रयास करें।